बुद्ध और उनका धम्म (संक्षिप्त)

बाबा साहब डॉ. भीम राव अम्बेडकर

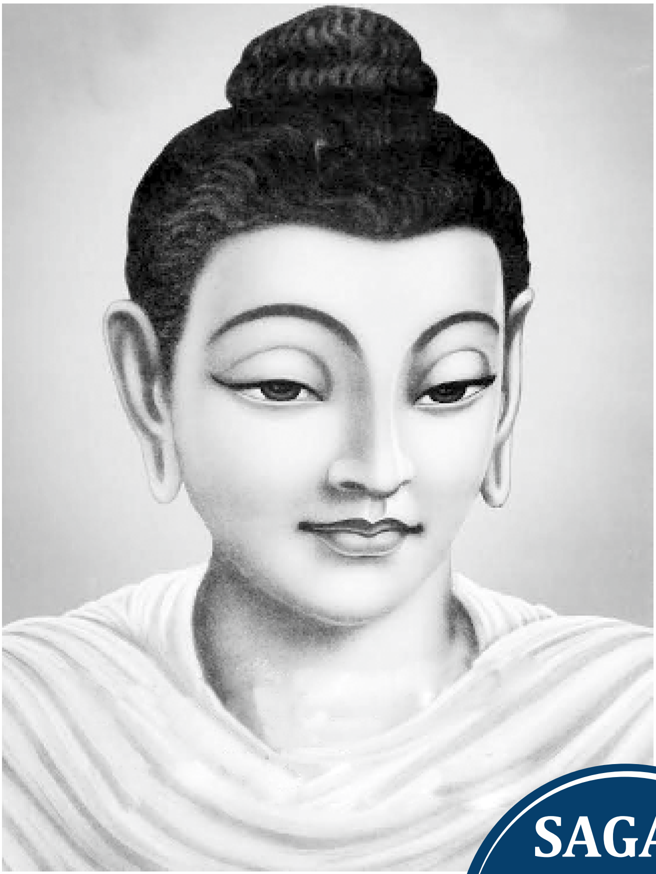

SAGAR
द्वारा
निःशुल्क
वितरण

बुद्ध और उनका धम्म

(संक्षिप्त)

बाबा साहब डॉ. भीम राव अम्बेडकर

SAGAR
द्वारा
निःशुल्क
वितरण

Printed by:
A. S. SCREEN PRINTERS
Tigaon Road, Near Hero Honda Agency, Ballbhgarh, Faridabad

भूमिका

महान मानवतावादी तथागत गौतम बुद्ध को लेकर समाज में अनेक भ्रांतियां प्रचलित है। इन भ्रांतियों का निवारण करने, उनके विषय में सही जानकारी देने, उनके विचारों से समाज को अवगत कराने तथा उन्हें अपनाने के उद्देश्य से SAGAR संस्था द्वारा यह संक्षिप्त पुस्तक बनाई गई है।

यह पुस्तक बाबा साहब डॉ. भीम राव अम्बेडकर द्वारा रचित 'THE BUDDHA AND HIS DHAMMA' पुस्तक का संक्षिप्त रूप है। पुस्तक में तथागत गौतम बुद्ध के जीवन और विचारों को मूल रूप में ही रखा गया है।

लगभग 500 पृष्ठों की मूल पुस्तक को लगभग 104 पृष्ठों में समाहित करने के क्रम में तथागत गौतम बुद्ध के जीवन की घटनाओं और विचारों से संबन्धित तथ्यों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। इनके विषय में विस्तारपूर्वक जानने के लिए हिन्दी में उपलब्ध बाबा साहब डॉ. भीम राव अम्बेडकर द्वारा रचित 'बुद्ध और उनका धम्म' को अवश्य पढ़े।

इस पुस्तक का SAGAR संस्था द्वारा निःशुल्क वितरण किया जाता है। यह पुस्तक बिक्री के लिए नहीं है।

बुद्ध पूर्णिमा, 2017 — SAGAR

परिचय

भारतीय जनता में बौद्ध धम्म के प्रति बढ़ती रूचि के संकेत स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इसके साथ–साथ एक और स्वाभाविक मांग भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है और वह है तथागत बुद्ध के जीवन और उनकी शिक्षाओं के सम्बंध में एक स्पष्ट तथा सुसंगत कथन की।

जो बुद्धिस्ट नहीं है उसके लिए यह कार्य अत्यंत कठिन है कि वह बुद्ध के जीवन और उनकी शिक्षाओं को एक ऐसे रूप में पेश कर सके कि उनमें पूर्ण रूप से सब कुछ सुसंगत हो। निकायों के आधार पर बुद्ध का जीवन–चरित्र सुसंगत रूप में लिखना केवल कठिन ही नहीं प्रतीत होता वरन उनकी शिक्षाओं के कुछ भाग की सुसंगत अभिव्यक्ति और भी अधिक कठिन हो जाती है। यथार्थ में ऐसा कहने में कुछ भी अतिश्योक्ति नहीं होगी कि संसार के धर्मों के संस्थापकों में बौद्ध धम्म के संस्थापक बुद्ध के जीवन और उनकी शिक्षाओं को प्रस्तुत करने में अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं, जो रहस्यमय न होने पर भी एकदम उलझन पैदा करने वाली अवश्य हैं। क्या यह आवश्यक नहीं कि इन समस्याओं का निराकरण किया जाए और बौद्ध धम्म के समझाने के मार्ग को आसान किया जाए? क्या अब वह समय नहीं आ गया है कि बौद्ध–जन उन समस्याओं को लें और उन पर सामान्य रूप से विचार–विमर्श करें और वे इन समस्याओं पर जितना भी प्रकाश डाला जा सकता है उसे डालें ?

इन समस्याओं पर चर्चा करने के लिए मैं उन्हें यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ।

पहली समस्या बुद्ध के जीवन की मुख्य घटना से सम्बंधित है। सिद्धार्थ गौतम ने प्रव्रज्या क्यों ग्रहण की? परंपरागत उत्तर है कि उन्होंने प्रव्रज्या इसलिए ग्रहण की क्योंकि उन्होंने एक वृद्ध पुरुष, एक रोगी व्यक्ति तथा एक मृतक की लाश को देखा था। स्पष्ट रूप से यह उत्तर बेतुका (असंगत) है। जिस समय सिद्धार्थ ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी, उस समय उनकी आयु 29 वर्ष की थी। यदि सिद्धार्थ ने इन्हीं तीन दृश्यों के परिणामस्वरूप प्रव्रज्या ग्रहण की तो यह कैसे हो सकता है कि उन्होंने ये तीन दृश्य पहले कभी नहीं देखे? ये जीवन की ऐसी सामान्य घटनाएं हैं जो प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में घटती रहती हैं और सिद्धार्थ इससे पूर्व उन्हें देख पाने में असफल नहीं रहे होंगे। इस

परंपरागत मान्यता को स्वीकार करना असंभव है कि (29 वर्ष की आयु होने पर) सिद्धार्थ ने उन्हें पहली बार देखा। **यह व्याख्या विश्वसनीय और तर्कसंगत नहीं है।** किंतु यदि यह प्रश्न का उत्तर नहीं है, तब सही उत्तर क्या है ?

दूसरी समस्या चार आर्य–सत्यों द्वारा उत्पन्न होती है। क्या ये बुद्ध की मूल शिक्षाओं के ही भाग हैं? जीवन स्वभावतः दुख है, यह सिद्धांत जैसे बुद्ध धम्म की जड़ पर ही कुठारघात करता प्रतीत होता है। यदि जीवन ही दुख है, मरण दुख है, पुनरुत्पत्ति दुख है, तब तो हर चीज का ही अंत है। न ही धम्म और न ही दर्शन व्यक्ति को इस संसार में सुख प्राप्त करने में सहायक हो सकते हैं। यदि दुख से मुक्ति ही नहीं है तो फिर धम्म भी क्या कर सकता है और बुद्ध भी किसी मनुष्य को उस दुख से मुक्ति दिलाने के लिए क्या कर सकते हैं ? क्योंकि जन्म स्वयं ही सदा सुखमय है। ये चार आर्य–सत्य जो बुद्धिस्ट नहीं हैं उनके द्वारा बौद्ध धम्म स्वीकार करने के मार्ग में बड़ी बाधा हैं। क्योंकि चार आर्य–सत्य मनुष्य को आशा से वंचित करते हैं। ये आर्य–सत्य बुद्ध के धम्म–सिद्धांत को निराशावादी सिद्धांत बना देते हैं। क्या ये चार आर्य–सत्य बुद्ध के मूल सिद्धांत के भाग हैं अथवा ये बाद के भिक्खुओं द्वारा की गई अभिवृद्धि हैं ?

एक तीसरी समस्या का सम्बंध आत्मा, कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धांतों से है। बुद्ध ने 'आत्मा' के अस्तित्व से इंकार किया। लेकिन साथ ही उन्होंने 'कर्म' तथा 'पुनर्जन्म' के सिद्धांत का भी समर्थन किया है। प्रथम दृष्टि में प्रश्न पैदा होता है, 'आत्मा' ही नहीं तो कर्म कैसा? 'आत्मा' ही नही ंतो पुनर्जन्म कैसा? ये सचमुच चकरा देने वाले प्रश्न हैं। बुद्ध ने 'कर्म' तथा 'पुनर्जन्म' शब्दों का प्रयोग किन विशिष्ट अर्थों में किया है? क्या बुद्ध ने इन शब्दों का भिन्न अर्थों में प्रयोग किया, उन अर्थों से सर्वथा भिन्न, जिन अर्थों में बुद्ध के समकालीन ब्राह्मणों ने इन शब्दों का प्रयोग किया था? यदि ऐसा है, तो किस अर्थ में? अथवा क्या उन्होंने उन्हीं अर्थों में इन शब्दों का प्रयोग किया जिन अर्थों में ब्राह्मण इनका प्रयोग करते थे? यदि हां, तो क्या 'आत्मा' के अस्तित्व को अस्वीकार करने तथा 'कर्म' और 'पुनर्जन्म' के सिद्धांत को मान्य करने में भयानक असंगति (विरोधाभास) नहीं है ?

एक चौथी समस्या भिक्खु को ही लेकर है। बुद्ध द्वारा भिक्खु संघ की स्थापना का क्या उद्देश्य था? क्या उनका उद्देश्य एक परिपूर्ण मनुष्य का निर्माण था? अथवा उनका उद्देश्य ऐसे समाज–सेवकों की रचना करना था जो लोगों की सेवा में उनके मित्र, मार्गदर्शक और दार्शनिक के रूप में समर्पित हों ? यह एक अत्यंत महत्त्व का प्रश्न है। इस पर बौद्ध धम्म का भविष्य निर्भर करता है। यदि भिक्खु केवल एक परिपूर्ण मुनष्य मात्र है तो उसका धम्म प्रचार कार्य में कोई उपयोग नहीं, क्योंकि यद्यपि परिपूर्ण मनुष्य है तो वह एक स्वयं तक सीमित 'स्वार्थी' मनुष्य है। दूसरी ओर, यदि वह समाज–सेवक भी है तो उससे बौद्ध धम्म भी कुछ आशा रख सकता है। इस प्रश्न पर केवल सैद्धांतिक सुसंगति (अनुरूपता) के हित में ही नहीं वरन भावी बौद्ध धम्म के हित में भी निर्णय लिया जाना चाहिए।

मैं आशा करता हूं कि मेरा प्रश्न पाठकों को आगे आकर उनके समाधान हेतु अपना योगदान देने के लिए जागृत करेगा।

बी. आर. अम्बेडकर

विषय–सूची

अध्याय–1

सिद्धार्थ गौतम किस प्रकार बोधिसत्व से बुद्ध बने
जन्म से प्रव्रज्या तक

1. उनका कुल 1
2. उनका जन्म 2
3. महामाया का परिनिर्वाण 2
4. विवाह 2
5. शाक्य संघ में दीक्षा 3
6. संघ के साथ मतभेद 5
7. देश छोड़ जाने का प्रस्ताव 7
8. प्रव्रज्या ही समाधान 9
9. विदाई के शब्द 10
10. महाभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) 12
11. शांति का समाचार 13
12. समस्या की नई पृष्ठभूमि 14

अध्याय–2

नए प्रकाश की खोज में

1. तपश्चर्या का परीक्षण 16
2. तपश्चर्या का त्याग 16

अध्याय–3

ज्ञान प्राप्ति और नए मार्ग का दर्शन

1. संबोधि–प्राप्ति 18
2. नए धम्म का आविष्कार 19

अध्याय–4

बुद्ध और उनके पूर्ववर्ती

1. बुद्ध और वैदिक ऋषि 20
2. ब्राह्मण ग्रंथ 21

अध्याय–5

तुलना तथा विरोध

1. जिसे उन्होंने अस्वीकार किया 26
2. जिसे उन्होंने परिवर्तित किया 26
3. जिसे उन्होंने स्वीकार किया 26

अध्याय–6

परिव्राजकों की धम्मदीक्षा

1. सारनाथ आगमन 28
2. बुद्ध का प्रथम धम्मोपदेश 28
3. बुद्ध का प्रथम धम्मोपदेश (क्रमशः) (निर्मलता का पथ) 30
4. बुद्ध का प्रथम धम्मोपदेश (आष्टांगिक मार्ग या सम्यक मार्ग) 30
5. बुद्ध का प्रथम धम्मोपदेश (शील का मार्ग) 33
6. बुद्ध का प्रथम धम्मोपदेश (समापन) 34
7. परिव्राजकों की प्रतिक्रिया 35

अध्याय–7

बुद्ध ने क्या शिक्षा दी ?

1. बुद्ध ने अपने ही धम्म में अपने लिए किसी स्थान का दावा नहीं किया 36
2. बुद्ध ने मुक्ति का आश्वासन नहीं दिया। उन्होंने कहा कि मैं मार्गदाता हूँ, मोक्षदाता नहीं 37
3. बुद्ध ने अपने लिए अथवा अपने धम्म के लिए किसी प्रकार के दैवत्व का दावा नहीं किया। उनका धम्म आदमी के लिए एक आदमी द्वारा खोजा गया धम्म था। यह ईश्वरीय नहीं था 37

अध्याय–8

धम्म क्या है ?

1. जीवन की निर्मलता बनाए रखना धम्म है 39
2. जीवन में पूर्णता प्राप्त करना धम्म है 41
3. निर्वाण में रहना धम्म है 41
4. तृष्णा का त्याग धम्म है 44
5. यह मानना कि सभी मिश्रित (संयुक्त) पदार्थ अनित्य हैं, धम्म है 44

6. कर्म को नैतिक–व्यवस्था का उपकरण (साधन) मानना, धम्म है 45

अध्याय–9

अधम्म क्या है ?

1. परा–प्राकृतिक (Super Natural) में विश्वास धम्म नहीं है 47
2. ईश्वर में विश्वास धम्म का आवश्यक अंग नहीं है 48
3. ब्रह्म में लीनता पर आधारित धर्म मिथ्या धम्म है 48
4. आत्मा में विश्वास धम्म नहीं है 49
5. बलि (यज्ञ–कर्म) में विश्वास धम्म नहीं है 50
6. धम्म की पुस्तकों का अध्ययन मात्र धम्म नहीं है 50
7. धर्म–ग्रंथों को गलती की संभावना से परे मानना धम्म नहीं है 51

अध्याय–10

सद्धम्म क्या है ?

1. संसार को धम्म–राज्य बनाना 52
2. धम्म तभी सद्धम्म कहला सकता है, जब वह सभी के लिए ज्ञान का द्वार खोल दे 53
3. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह सिखाता है कि जो चीज आवश्यक है वह 'प्रज्ञा' है 53
4. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि केवल 'प्रज्ञा' पर्याप्त नहीं है इसके साथ शील का होना भी अनिवार्य है 53
5. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि प्रज्ञा और शील के साथ–साथ करुणा का होना भी अनिवार्य है 54
6. धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह यह शिक्षा दे कि करुणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है 54
7. धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह मनुष्य और मनुष्य के बीच की दीवार को गिरा दे 55
8. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा दे कि किसी मनुष्य का जन्म से नहीं, बल्कि उसके गुणों से ही मूल्यांकन किया जाना चाहिए 57
9. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता को बढ़ावा देता है 57

अध्याय–11

धर्म और धम्म

1. धर्म क्या है ?............ 59
2. धम्म से धर्म कैसे भिन्न है............ 60
3. नैतिकता और धर्म............ 61
4. धम्म और नैतिकता 61
5. केवल नैतिकता ही पर्याप्त नहीं है। यह पवित्र और विश्वव्यापी होनी चाहिए 62

अध्याय–12

किस प्रकार शाब्दिक समानता मूलभूत अर्थ–भेद को छिपाए रखती है

1. पुनर्जन्म किस (चीज) का............ 63
2. पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का ?............ 64
3. क्या बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धांत ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धांत के समान ही है ?............ 64
4. क्या बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व–कर्म का भविष्य के जन्म पर प्रभाव पड़ता है? 66
5. क्या बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व कर्मों का भविष्य के जीवन पर प्रभाव पड़ता है? 68
6. अहिंसा के विभिन्न अर्थ जिनमें इसकी व्याख्या की गई और इसे व्यवहार में लाया गया............ 68
7. अहिंसा का अर्थ............ 69
8. भ्रम के कारण 70

अध्याय–13

बौद्ध जीवन–मार्ग

1. अच्छे कर्म, बुरे कर्म तथा पाप 72
2. तृष्णा और कामवासना 72
3. ठेस और द्वेष............ 73
4. क्रोध और शत्रुता............ 73
5. व्यक्ति, मन और मन के मैल 73

6. स्वयं के बारे में और स्व–विजय 74
7. प्रज्ञा, न्याय और अच्छी संगति 75
8. विचारशीलता और बुद्धिमता 75
9. सतर्कता, उत्सुकता और साहस 76
10. दुख और सुख, दान तथा करुणा 76
11. ढोंग 77
12. सम्यक मार्ग का अनुसरण 77
13. धम्म को मिथ्या धर्म में नहीं मिलाओ 77

अध्याय–14

तथागत की धम्म देसनाएं

1. कुशल कर्म करने की आवश्यकता 78
2. सद्धम्म पर चलने के लिए किसी साथी की प्रतीक्षा आवश्यक नहीं 78
3. निर्वाण क्या है ? 79
4. निर्वाण का मूल 79
5. 'ईश्वर' से प्रार्थनाएं और याचनाएं करना बेकार 80
6. कोई भी भोजन खाने का पवित्रता से कोई संबंध नहीं 80
7. राजकुमारों की कृपा पर निर्भर मत रहो 81
8. राजनीतिक और सैनिक शक्ति सामाजिक व्यवस्था पर ही निर्भर करती है 81

अध्याय–15

संघ

1. संघ और उसका संगठन 83
2. संघ में प्रवेश 83
3. भिक्खु और उसका व्रत 85
4. भिक्खु कैसा हो ? बुद्ध की अवधारणा 85
5. भिक्खु तथा ब्राह्मण 87
6. भिक्खु और उपासक 88
7. धम्मदीक्षा देना भिक्खु का कर्त्तव्य 89
8. भिक्खु को धम्म प्रसार के लिए संघर्षरत रहना चाहिए 90

अध्याय–16

गृहस्थ के जीवन–नियम

1. धनवान के लिए नियम 91
2. गृहस्थ के लिए नियम 91
3. बच्चों के लिए नियम 92

अध्याय–17

उनके धम्म के आलोचक

1. व्रत (Vow) ग्रहण करने की आलोचना 93
2. अहिंसा के सिद्धांत की आलोचना 93
3. शील का उपदेश देकर अंधकार (निराशा) उत्पन्न करने का आरोप 94
   (क) दुख निराशा का कारण
   (ख) 'अनित्यता' को निराशा का कारण बताना
   (ग) क्या बौद्ध धम्म निराशावादी है ?

अध्याय–18

महापरिनिर्वाण

1. उत्तराधिकारी की नियुक्ति के लिए आग्रह 97
2. अंतिम वचन 97
3. शोकाकुल आनंद 99
4. अंतिम संस्कार 100

अध्याय–19

महामानव सिद्धार्थ गौतम

1. महाकारुणिक की करुणा 101
2. पीड़ितो को सांत्वना (विशाखा को सांत्वना) 101
3. उनकी समता की भावना तथा समान व्यवहार 102

अध्याय–20

उपसंहार

1. उनके धम्म के प्रचार का व्रत 104

अध्याय–1

सिद्धार्थ गौतम किस प्रकार बोधिसत्व से बुद्ध बने

जन्म से प्रव्रज्या तक

1. उनका कुल

1. अतीत में देखने पर हमें ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी में, उत्तर भारत कोई समूचा प्रभुता–संपन्न राज्य नहीं था।
2. देश अनेक छोटे–बड़े राज्यों में बंटा हुआ था। इनमें से कुछ राज्यों में प्रत्येक पर जहां एक अकेले राजा का अधिकार था, वहीं कुछ पर किसी अकेले राजा का अधिकार नहीं था।
3. जो राज्य राजाओं के अधीन थे उनकी कुल संख्या सोलह थी। उनके नाम थे– अंग, मगध, कासी, कोसल, वज्जी, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पंचाल, मत्स्य, सूरसेन, अस्स, अवंति, गंधार तथा कंबोज।
4. जिन राज्यों में किसी एक राजा का आधिपत्य नहीं था, वे थे– कपिलवस्तु के शाक्य, पावा तथा कुसीनारा के मल्ल, वैसाली के लिच्छिवि, मिथिला के विदेह, रामगाम के कोलिय, अल्लकप्प के बुलि, केसपुत्त के कालाम, रेसपुत्त के कलिंग, पिप्पलवन के मौर्य तथा भग्ग जिनकी राजधानी सिंसुमारगिरी थी।
5. **जिन राज्यों में किसी एक राजा का अधिकार था वे जनपद कहलाते थे और जिन राज्यों पर किसी एक राजा का अधिकार नहीं था, वे संघ या गण कहलाते थे।**
6. कपिलवस्तु के शाक्यों की राज्य–व्यवस्था के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है कि वहां गणतंत्र था अथवा कुछ लोगों का कुलतंत्र था।
7. वैसे, इतनी जानकारी तो स्पष्ट रूप से है कि शाक्यों के गणतंत्र में कई शासक–परिवार थे और वे एक के बाद एक क्रमशः शासन करते थे।
8. शासक–परिवार का जो मुखिया होता था, वह राजा कहलाता था।
9. सिद्धार्थ गौतम के जन्म के समय राजा बनने की बारी शुद्धोदन की थी।
10. शाक्य–राज्य भारत के उत्तर–पूर्वी कोने में स्थित था। वह एक स्वतंत्र राज्य था। लेकिन आगे चलकर कोसलराज इस पर अपना आधिपत्य जमाने में सफल हो गया।

11. इसका परिणाम यह हुआ कि कोसलराज की स्वीकृति के बिना शाक्य–राज्य के लिए अपने कुछ राजकीय अधिकारों का उपयोग असंभव हो गया।

2. उनका जन्म

1. सिद्धार्थ गौतम शुद्धोदन के घर जन्मे थे। उनके जन्म की कथा इस प्रकार है:
2. ईसा पूर्व 563 वैषाख पूर्णिमा के दिन बालक ने जन्म ग्रहण किया।
3. शुद्धोदन और महामाया का विवाह हुए बहुत समय बीत गया था। लेकिन उनकी कोई संतान नहीं हुई थी। अंत में उन्हें जब पुत्र–लाभ हुआ तो शुद्धोदन, उसके परिवार तथा शाक्यों द्वारा पुत्र का जन्मोत्सव बहुत हर्ष और धूमधाम से मनाया गया।
4. बालक के जन्म के समय कपिलवस्तु पर शासन करने की बारी शुद्धोदन की थी। वे राजा की उपाधि से गौरवान्वित हो रहे थे। स्वाभाविक तौर पर बालक भी राजकुमार ही कहलाया।

3. महामाया का परिनिर्वाण

1. पांचवें दिन नामकरण संस्कार किया गया। बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया।
2. बालक के जन्म और उसके नामकरण के हर्षोल्लास के बीच में ही महामाया अचानक बीमार पड़ गई और उसके रोग ने गंभीर रूप धारण कर लिया। माता ने सोचा– "मेरा बालक शीध्र ही मातृहीन हो जाएगा।"
3. तब माता ने कहा–''महाप्रजापति! मैं तुम्हें अपना बच्चा सौंपती हूं। मुझे लेशमात्र भी संदेह नहीं कि तुम उसके लिए उसकी मां से भी बढ़कर होगी।"
4. जब सिद्धार्थ की माता का देहांत हुआ तो उसकी आयु केवल सात दिन की थी। सिद्धार्थ का पालन–पोषण महाप्रजापति (महामाया की बड़ी बहन) ने किया।
5. सिद्धार्थ का एक छोटा भाई भी था जिसका नाम नंद था। वह शुद्धोदन का महाप्रजापति से उत्पन्न पुत्र था।

4. विवाह

1. दंडपाणि नाम का एक शाक्य था। यशोधरा उसकी पुत्री थी। अपने सौंदर्य और शील के लिए वह प्रसिद्ध थी।

2. यशोधरा अपने सोलहवें साल में पहुंच गई थी और दंडपाणि उसके विवाह के बारे में विचार कर रहा था।

3. प्रथा के अनुसार दंडपाणि ने अपने सभी पड़ोसी देशों के युवकों को अपनी लड़की के स्वयंवर में सम्मिलित होने का आमंत्रण भेजा।

4. सिद्धार्थ गौतम के पास भी एक आमंत्रण भेजा गया।

5. स्वयंवर में पधारे युवको में से यशोधरा ने सिद्धार्थ गौतम को ही चुना।

6. इसके बाद विवाह संपन्न हुआ। शुद्धोदन और दंडपाणि दोनों को प्रसन्नता हुई। इसी प्रकार यशोधरा और महाप्रजापति भी बहुत प्रसन्न थे।

7. वैवाहिक जीवन के लंबे समय के बाद यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम राहुल रखा गया।

5. शाक्य संघ में दीक्षा

1. शाक्यों का अपना एक संघ था। बीस वर्ष की आयु होने पर हर शाक्य युवक को शाक्य संघ में दीक्षित होकर संघ का सदस्य बनना होता था।

2. सिद्धार्थ गौतम बीस वर्ष का हो चुका था। अब उसके लिए यह समय था कि वह संघ में दीक्षित हो और उसका सदस्य बने।

3. शाक्यों का अपना एक सभा–भवन था, जिसे वे संथागार कहते थे। यह कपिलवस्तु में स्थित था। संघ की सभाएं संथागार में ही होती थी।

4. सिद्धार्थ को संघ में दीक्षित कराने के उद्देश्य से शुद्धोदन ने शाक्य पुरोहित को संघ की एक सभा बुलाने के लिए कहा।

5. तदनुसार कपिलवस्तु में शाक्यों के संथागार में संघ एकत्रित हुआ।

6. सभा में पुरोहित ने प्रस्ताव रखा कि सिद्धार्थ को संघ का सदस्य बनाया जाए।

7. शाक्य–सेनापति अपने स्थान पर खड़ा हुआ और उसने संघ को संबोधित करते हुए कहा, “शाक्य कुल के शुद्धोदन के परिवार में उत्पन्न सिद्धार्थ गौतम संघ का सदस्य बनना चाहता है। उसकी आयु बीस वर्ष की है और वह हर तरह से संघ का सदस्य बनने के योग्य है। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि उसे शाक्य संघ का सदस्य बनाया जाए। मेरा विनम्र निवेदन है कि यदि कोई इस प्रस्ताव के विरुद्ध हो तो वह बोले।”

8. प्रस्ताव के विरोध में कोई भी नहीं खड़ा हुआ। सेनापति ने कहा, ”मैं दूसरी

बार भी पूछता हूं कि यदि कोई प्रस्ताव के विरुद्ध है, तो वह बोले।"

9. दूसरी, तीसरी बार भी कोई प्रस्ताव के विरुद्ध नहीं बोला।

10. शाक्यों की कार्य प्रणाली में यह नियम था कि बिना प्रस्ताव के कोई कार्यवाही नहीं हो सकती थी और जब तक कोई प्रस्ताव तीन बार पारित न हो जाए तब तक वह स्वीकृत नहीं समझा जाता था।

11. सेनापति का प्रस्ताव तीन बार निर्विरोध पारित हो जाने पर, सिद्धार्थ के सदस्य के रूप में विधिवत शाक्यसंघ में सम्मिलित किए जाने की घोषणा कर दी गई।

12. तब शाक्यों का पुरोहित खड़ा हुआ और उसने सिद्धार्थ को अपने स्थान पर खड़े होने के लिए कहा।

13. पुरोहित बोला, "मैं सर्वप्रथम आपको यह बताऊंगा कि संघ के सदस्य की हैसियत से आपके क्या कर्तव्य हैं।" उसने उन्हें क्रमशः एक–एक करके गिनाया–

"(1) आपको अपने तन, मन और धन से शाक्यों के हितों की रक्षा करनी होगी।

(2) आपको कभी भी संघ की सभाओं में अनुपस्थित नहीं रहना होगा।

(3) आपको बिना किसी भय या पक्षपात के, किसी भी शाक्य का दोष पता चलने पर, खुलकर कह देना होगा।

(4) यदि आप पर कभी कोई दोषारोपण किया जाए तो आप क्रोधित नहीं होंगे, दोषी होने पर अपना दोष स्वीकार कर लेना होगा, निर्दोष होने पर सफाई देने का पूर्ण अवसर प्राप्त होगा।"

14. पुरोहित ने आगे कहा, "मैं अब आपकों बताऊंगा कि क्या करने पर आप को संघ की सदस्यता से वंचित किया जा सकता हैं– (1) व्यभिचार करने पर आप संघ के सदस्य नहीं रह सकते, (2) हत्या करने पर आप संघ के सदस्य नहीं रह सकते, (3) चोरी करने पर आप संघ के सदस्य नहीं रह सकते, (4) झूठी साक्षी देने का दोषी होने पर आप संघ के सदस्य नहीं रह सकते।"

15. सिद्धार्थ ने कहा, "मान्यवर! मैं आपका कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे संघ के अनुशासन से सम्बंधित नियमों से परिचित कराया। मैं आपको विश्वास

दिलाता हूं कि मैं उनके अर्थ और व्यंजन सहित उन्हें पालन करने का भरसक प्रयास करूंगा।

6. संघ के साथ मतभेद

1. उसकी सदस्यता के आठवें वर्ष में एक ऐसी घटना घटी जो शुद्धोदन के परिवार के लिए दुखद बन गई और सिद्धार्थ के जीवन में संकटपूर्ण स्थिति पैदा हो गई।
2. शाक्य और कोलिय दोनों ही रोहिणी नदी के पानी से अपने–अपने खेत सींचते थे। हर फसल पर उनका आपस में विवाद होता था कि कौन रोहिणी के जल का पहले और कितना उपयोग करेगा। यह विवाद कभी–कभी झगड़ों में बदल जाता और झगड़े लड़ाइयों में।
3. **जिस वर्ष में सिद्धार्थ की आयु 28 वर्ष की थी उस वर्ष रोहिणी के पानी को लेकर शाक्यों के नौकरों और कोलियों के नौकरों के बीच एक बड़ा झगड़ा हो गया। दोनों ओर के लोग घायल हुए।**
4. इसका पता चलने पर शाक्यों व कोलियों ने सोचा कि इस विवाद को सदा–सदा के लिए युद्ध द्वारा हल कर लिया जाना चाहिए।
5. अतः शाक्यों के सेनापति ने कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के प्रश्न पर विचार करने के लिए शाक्य संघ का एक अधिवेशन बुलाया।
6. संघ के सदस्यों को संबोधित करते हुए सेनापति ने कहा, "हमारे लोगों पर कोलियों ने आक्रमण किया। इसलिए हमारे लोगों को पीछे हटना पड़ा। कोलियों ने इससे पहले भी अनेक बार ऐसी आक्रामक कार्यवाही की हैं। हमने अब तक उन्हें सहन किया है। लेकिन ऐसा हमेशा नहीं चल सकता। इसे रोका जाना चाहिए और इसे रोकने का एक ही रास्ता है कि कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाए। मेरा प्रस्ताव है कि कोलियों के विरुद्ध यह संघ युद्ध की घोषणा कर दे। जो विरोध करना चाहें वे बोलें।"
7. सिद्धार्थ गौतम अपने स्थान पर खड़ा हुआ और बोला,"मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूं। युद्ध से किसी प्रश्न का समाधान नहीं होता। युद्ध छेड़ देने से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। इससे एक दूसरे युद्ध का बीजारोपण हो जाएगा। किसी की हत्या करने वाले को कोई दूसरा हत्या करने वाला मिल ही जाता है; जो किसी को जीतता है उसे कोई दूसरा जीतने वाला मिल ही जाता है; जो मनुष्य किसी को लूटता है उसे कोई दूसरा लूटने वाला मिल ही जाता है।"

8. सिद्धार्थ गौतम ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "मेरे विचार में शाक्यों को कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। पहले सावधानी से इस बात की जांच करनी चाहिए कि वास्तव में दोषी पक्ष कौन सा है। मैंने सुना है कि हमारे मनुष्य भी आक्रामक रहे हैं। यदि यह सत्य है तो स्पष्टतः हम भी निर्दोष नहीं हैं।"

9. सेनापति ने उत्तर दिया, "यह ठीक है कि हमारे मनुष्य आक्रामक थे। लेकिन यह भूलना नहीं चाहिए कि पहले पानी लेने की बारी हमारी ही थी।"

10. **सिद्धार्थ गौतम ने कहा, "इससे स्पष्ट है कि हम भी सर्वथा दोषमुक्त नहीं है। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि हम अपने में से दो सदस्य चुनें और कोलियों से भी कहा जाए कि वे भी अपने में से दो सदस्य चुनें और फिर ये चारों मिलकर एक पांचवां सदस्य चुनें। ये पांचों सदस्य मिलकर झगड़े का समाधान करें।"**

11. सिद्धार्थ गौतम ने संशोधन हेतु जो प्रस्ताव रखा उसका विधिवत समर्थन हो गया। किंतु सेनापति ने संशोधन का विरोध किया और कहा, "मुझे विश्वास है कि जब तक कोलियों को कठोर दंड नहीं दिया जाता तब तक उनका यह संत्रास (Menance) समाप्त नहीं होगा।"

12. अतः प्रस्ताव और संशोधन पर मत लेना आवश्यक हो गया। पहले सिद्धार्थ के संशोधन का प्रस्ताव ही मत के लिए प्रस्तुत हुआ। वह बहुमत से अमान्य हो गया।

13. तब सेनापति ने स्वयं अपने प्रस्ताव पर मत मांगे। सिद्धार्थ गौतम ने फिर खड़े होकर विरोध किया। उसने कहा, "मेरी संघ से प्रार्थना है कि इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया जाए। शाक्य और कोलिय निकट–सम्बंधी हैं। यह नासमझी है कि वे एक दूसरे को बर्बाद करें।"

14. सेनापति ने सिद्धार्थ गौतम के तर्क का घोर विरोध किया। उसने इस बात पर जोर दिया कि युद्ध में कोई अपने–पराये का भेद नहीं किया जा सकता। उन्हें राज्य के हित में अपने सगे भाइयों से भी लड़ना होगा।

15. **सिद्धार्थ ने उत्तर दिया, "जहां तक मैं समझता हूं, धर्म तो इस बात को मानने में है कि वैर से वैर कभी शांत नहीं होता। यह केवल अवैर (प्रेम) से ही शांत हो सकता है।**

16. सेनापति क्रोधित हो उठा और बोला, "इस दार्शनिक शास्त्रार्थ में पड़ना बेकार

है। स्पष्ट बात तो यह है कि सिद्धार्थ को मेरा प्रस्ताव अमान्य है। हम संघ का मत लेकर इसका निश्चय करें कि संघ का क्या विचार है।"

17. तदनुसार सेनापति ने अपने प्रस्ताव पर लोगों के मत मांगे। भारी बहुमत से वह प्रस्ताव पारित हो गया।

7. देश छोड़ जाने का प्रस्ताव

1. अगले दिन सेनापति ने शाक्य संघ की एक और सभा बुलाई जिसका उद्देश्य था उसकी अनिवार्य सैनिक–भर्ती की योजना पर विचार करना।

2. सभा में दोनों पक्ष उपस्थित थे – वे भी जिन्होंने संघ की पहली सभा में युद्ध –घोषणा के पक्ष में मत दिया था और वे भी जिन्होंने इसके विरुद्ध मत दिया था।

3. जिन्होंने इस पक्ष में मत दिया था, उनके लिए सेनापति का प्रस्ताव स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं थी। यह उनके पूर्व निर्णय का स्वाभाविक परिणाम था।

4. लेकिन जिस अल्पमत ने उक्त निर्णय के विरुद्ध मत दिया था, उसके सामने एक समस्या थी। वह समस्या थी – बहुमत के निर्णय के आगे झुका जाए अथवा नहीं।

5. अल्पमत का दृढ़ संकल्प था कि बहुमत के आगे नहीं झुका जाए। यही कारण था कि उन्होंने उस सभा में उपस्थित रहने का निर्णय किया था। किन्तु किसी में यह साहस नहीं था कि इस बात को खुलकर कह सकता। कदाचित वे बहुमत का विरोध करने के परिणामों से परिचित थे।

6. यह देखकर कि उसके समर्थक मौन बैठे हैं सिद्धार्थ खड़ा हुआ और उसने संघ को संबोधित करते हुए कहा, "मित्रों! आप जो चाहें, सो करें। आपके साथ बहुमत है। लेकिन मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ रहा है कि मैं अनिवार्य सैनिक भर्ती का विरोध करूंगा। मैं आपकी सेना में सम्मिलित नहीं होऊंगा और मैं युद्ध में भी भाग नहीं लूंगा।"

7. सिद्धार्थ गौतम की बात का उत्तर देते हुए सेनापति ने कहा, "उस शपथ को याद करो जो तुमने संघ का सदस्य बनते समय ग्रहण की थी। यदि तुम उनमें से किसी एक का भी पालन न करोगे तो तुम सार्वजनिक निंदा के भाजन बनोगे।"

8. सिद्धार्थ ने उत्तर दिया, "हां, मैंने अपने तन, मन और धन से शाक्यों के हितों की रक्षा करने का वचन दिया है। लेकिन मैं नहीं समझता कि यह युद्ध शाक्यों के हित में है। शाक्यों के हित के मुकाबले में सार्वजनिक निंदा का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं।"

9. सिद्धार्थ ने संघ को सावधान करते हुए याद दिलाई कि किस प्रकार कोलियों से निरंतर झगड़ते रहने के कारण शाक्य संघ बहुत कुछ कोसलराज के अधीन हो गया है। "इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है कि यह युद्ध शाक्य संघ की स्वतंत्रता को और भी कम करने के लिए कोसलराज को एक और अवसर प्रदान करेगा।"

10. सेनापति क्रोधित हो उठा और वह सिद्धार्थ को संबोधित करते हुए बोला, '' तम्हारा यह भाषण–कौशल किसी काम न आएगा। तम्हें संघ के बहुमत के निर्णय को मानना होगा। शायद तुम्हें इस बात का बहुत भरोसा है कि कोसलराज की अनुमति के बिना संघ अपनी आज्ञा की अवहेलना करने वाले को फांसी या देश निकाले का दण्ड नहीं दे सकता और यदि इनमें से कोई भी एक दण्ड तुम्हें दिया जाए तो कोसलराज इसकी अनुमति नहीं देगा।"

11. लेकिन याद रखो कि तुम्हें दण्ड देने के लिए संघ के पास और भी तरीके हैं। संघ तम्हारे परिवार के सामाजिक बहिष्कार की घोषणा कर सकता है ओर संघ तम्हारे परिवार के खेतों को जब्त भी कर सकता है। इसके लिए संघ को कोसलराज की अनुमति की आवश्यकता नहीं हैं।"

12. सिद्धार्थ ने समझ लिया कि यदि उसने कोलियों के विरुद्ध युद्ध–घोषणा करने के प्रस्ताव का अपना विरोध जारी रखा तो उसके क्या–क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं। **इसलिए उसे अब तीन बातों में से एक को चुनना था–(1) सेना में भर्ती होकर युद्ध में भाग लेना, (2) फांसी पर लटकना या देश निकाला स्वीकार करना, (3) अपने परिवार के लोगों का सामाजिक बहिष्कार और उनके खेतों की जब्ती के लिए राजी हो जाना।**

13. वह पहली बात किसी भी हालत में स्वीकार न करने के लिए दृढ़ संकल्प था। तीसरी बात पर वह विचार तक नहीं कर सकता था। इस परिस्थिति में उसने सोचा कि उसके लिए दूसरी बात ही सर्वाधिक ठीक थी।

14. तदनुसार सिद्धार्थ गौतम ने संघ को संबोधित किया, "कृपया आप मेरे परिवार को दंडित न करें। सामाजिक बहिष्कार द्वारा उन्हें कष्ट न दें। उनके खेत जब्त करके उन्हें जीविकाविहीन न करें। वे निर्दोष हैं। दोषी तो मैं हूं। मुझे अकेले ही अपनी गलती का दंड भोगने दीजिए। चाहें तो आप मुझे फांसी पर लटका दें और चाहें तो आप मुझे देश निकाला दे दें। मैं स्वेच्छा से इसे स्वीकार कर लूंगा और मैं वचन देता हूं कि मैं इसकी अपील कोसलराज से भी नहीं करूंगा।"

8. प्रव्रज्या ही समाधान

1. सेनापति ने कहा, "तुम्हारा सुझाव स्वीकार करना कठिन है, क्योंकि यदि तुम स्वेच्छा से भी मृत्यु अथवा देश–निकाला स्वीकार करोगे तो भी कोसलराज को इसका अवश्य ही पता लग जाएगा और वह निश्चयपूर्वक इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि शाक्य संघ ने ही दंड दिया है और तब वह शाक्य संघ के विरुद्ध कार्रवाई कर देंगे।"
2. "यदि इसमें कठिनाई है, तो मैं एक आसान उपाय सुझा सकता हूं", **सिद्धार्थ गौतम ने उत्तर दिया। "मैं परिव्राजक बन कर देश छोड़कर जा सकता हूं। यह भी एक प्रकार का 'देश–निकाला' ही तो है।"**
3. संघ को लगा कि सिद्धार्थ का सुझाव ही एकमात्र अच्छा रास्ता था। अतः संघ ने इसे स्वीकार कर लिया।
4. कार्यवाही की समाप्ति पर संघ विसर्जित होने को ही था कि एक युवा शाक्य अपने स्थान पर खड़ा हुआ और बोला, "कृपया मेरी बात सुनें। मुझे कुछ महत्तवपूर्ण बात कहनी है।"
5. बोलने की अनुमति मिलने पर उसने कहा, "मुझे पूर्ण विश्वास है कि सिद्धार्थ गौतम अपने वचन का पालन करेगा और तुरंत देश छोड़कर चला जाएगा। लेकिन एक बात है, जिससे मैं खुश नहीं हूं।
6. "मेरा प्रस्ताव यह है कि हमें सिद्धार्थ गौतम के देश छोड़ने और कोलियों के विरुद्ध वास्तविक युद्ध के आरंभ के बीच कुछ समय का अंतराल देना चाहिए, ताकि कोसलराज इन दोनों घटनाओं में सम्बंध स्थापित न कर सके।"
7. संघ को लगा कि निश्चय ही वह प्रस्ताव बहुत महत्त्वपूर्ण था। इसका औचित्य समझते हुए इसे स्वीकार कर लिया गया।
8. इस प्रकार शाक्य संघ का यह दुखद सत्र समाप्त हुआ और उस अल्पमत

ने भी जो युद्ध का विरोधी था किंतु जिसमें अपनी बात साफ–साफ कहने का साहस न था, उसने संतोष की सांस ली कि वह अनर्थकर परिणामों की स्थिति से पार हो गया।

9. विदाई के शब्द

1. शाक्य संघ की सभा में जो कुछ हुआ उसकी सूचना सिद्धार्थ गौतम के लौटने से बहुत पहले ही राज–महल में पहुंच चुकी थी।
2. घर पहुंचने पर सिद्धार्थ गौतम ने देखा कि उसके माता–पिता रो रहे थे और संताप में डूबे हुए थे।
3. शुद्धोदन ने कहा, "हम युद्ध की बुराइयों की चर्चा तो कर रहे थे। लेकिन मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि तुम इस सीमा तक चले जाओगे।"
4. सिद्धार्थ ने उत्तर दिया, "मैं भी नहीं सोचता था कि स्थिति ऐसा मोड़ ले लेगी। मैं आशा कर रहा था कि मैं अपने तर्कों से शांति हेतु शाक्यों का मन जीत लूंगा।
6. "लेकिन मैं आशा करता हूं कि आपने अनुभव किया होगा कि मैंने किस प्रकार परिस्थिति को अधिक बिगड़ने से बचा लिया। मैंने सत्य और न्याय के उद्देश्य को नहीं छोड़ा। सत्य और न्याय के लिए अडिग खड़ा रहा, चाहे उसके लिए कोई भी दंड रहा हो। मैंने उसके प्रहार को अपने ऊपर ले लिया।"
7. "लेकिन, तुम्हारे बिना हमारे लिए, इन खेतों का क्या लाभ है?" शुद्धोदन पीड़ा से भरकर बोले, "सारा परिवार ही शाक्य जनपद का परित्याग कर तुम्हारे साथ देश छोड़कर क्यों न चले?"
8. महाप्रजापति गौतमी भी रोते हुए शुद्धोदन के साथ–साथ बोली, "मैं भी इस बात से सहमत हूं, तुम हम सब को इस प्रकार छोड़कर अकेले कैसे जा सकते है?"
9. सिद्धार्थ ने प्रश्न किया, "मैं तुम सबको कैसे साथ ले जा सकता हूं? नंद (छोटा भाई) अभी बच्चा है। मेरे पुत्र राहुल का अभी–अभी जन्म हुआ है। क्या तुम इन्हें छोड़कर मेरे साथ जा सकती हो?"
10. शुद्धोदन ने पूछा, "लेकिन इतनी व्यग्रता क्यों? शाक्यसंघ ने अभी कुछ समय के लिए लड़ाई को स्थगित कर दिया है।

11. "हो सकता है कि युद्ध कभी छिड़े ही न। तुम अपनी प्रव्रज्या क्यों नहीं स्थगित कर देते? हो सकता है कि तुम्हारे यहां बने रहने के लिए शाक्य संघ से अनुमति प्राप्त करना संभव हो जाए।"

12. सिद्धार्थ को यह विचार सर्वथा नापसंद था। इसलिए उसने कहा, "क्योंकि मैंने प्रव्रजित हो जाने का वचन दिया है, इसीलिए शाक्यसंघ ने अभी कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का निर्णय स्थगित कर दिया है।

13. "यह संभव है कि मेरे प्रव्रज्या ग्रहण कर लेने पर शाक्य संघ को अपनी युद्ध की घोषणा को वापस लेने के लिए राजी किया जा सके। किंतु यह सब कुछ पहले मेरे प्रव्रज्या लेने पर ही निर्भर करता है।

14. "मैंने वचन दिया है और मुझे उसे अवश्य पूरा करना चाहिए। वचन उल्लंघन का परिणाम हमारे लिए और शांति दोनों के लिए बहुत गंभीर हो सकता है।

15. "मां! अब मेरे मार्ग में बाधक न बनों। मुझे अपनी अनुमति और अपना आशीर्वाद दो। जो कुछ हो रहा है, वह अच्छे के लिए ही है।"

16. महाप्रजापति गौतमी और शुद्धोदन दोनों मौन हो गए।

17. **तब सिद्धार्थ यशोधरा के कक्ष में पहुंचे।** उसे देख कर सिद्धार्थ मौन खड़ा हो गया, वह समझ नहीं पा रहे थे कि अब क्या कहे और कैसे कहे। यशोधरा ने ही चुप्पी तोड़ते हुए कहा, "कपिलवस्तु में शाक्य संघ की सभा में जो कुछ भी हुआ वह सब मैं सुन चुकी हूँ"

18. **सिद्धार्थ ने पूछा, "यशोधरा! मुझे बताओ कि मेरे प्रव्रजित होने के निर्णय के बारे में तुम क्या सोचती हो?"**

19. सिद्धार्थ समझते थे कि शायद यशोधरा हिम्मत हार जाएगी। किंतु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

20. अपनी भावनाओं पर पूरा नियंत्रण रखते हुए उसने उत्तर दिया, "यदि मैं ही तुम्हारी स्थिति में होती तो मैं भी इसके अतिरिक्त और क्या करती ? निश्चय से मैं कोलियों के विरुद्ध छेड़े जाने वाले युद्ध के पक्ष में नहीं ही होती।

21. **"तुम्हारा निर्णय उचित निर्णय है। मेरी सहमति और समर्थन तुम्हारे साथ है। मैं भी तुम्हारे साथ प्रव्रजित हो जाती। यदि मैं प्रव्रजित**

नहीं हो पा रही हूं तो इसका एक मात्र कारण यही है कि अभी मुझे राहुल का पालन–पोषण करना है।"

22. "अच्छा होता यदि ऐसा न हुआ होता। लेकिन स्थिति का सामना करने के लिए साहसी और वीर होना चाहिए। **तुम अपने माता–पिता तथा पुत्र की चिंता न करो। मैं जब तक जीऊंगी, उनकी देख–भाल करती रहूंगी।"**

23. "अब मैं इतना ही चाहती हूं कि जब तुम सभी निकट सम्बंधियों को छोड़कर प्रव्रजित होने जा रहे हो, तो **तुम किसी ऐसे नए जीवन–पथ की खोज करो, जो मानवता के लिए कल्याणकारी हो।"**

24. सिद्धार्थ गौतम इस बात से बहुत प्रभावित हुए। **इससे पहले उन्होंने कभी नहीं जाना था कि यशोधरा इतनी वीर, साहसी और उदार हृदय वाली स्त्री है और वह कितना गौरवशाली है कि उसे यशोधरा जैसी पत्नी मिली** और समय ने दोनों को अलग–अलग कर दिया। उसने उसे राहुल को लाने को कहा। उसने राहुल पर एक पिता की वात्सल्यपूर्ण दृष्टि डाली। फिर वह वहां से चला गया।

10. महाभिनिष्क्रमण (गृहत्याग)

1. सिद्धार्थ ने सोचा कि वह भारद्वाज से प्रव्रज्या प्राप्त करे, जिसका आश्रम कपिलवस्तु में ही था। तदनुसार वह अगले दिन अपने सारथी छन्न को साथ लेकर और अपने प्रिय अश्व कंथक पर चढ़कर आश्रम की ओर चल पड़ा।

2. जैसे ही वह आश्रम के समीप पहुंचा, स्त्री और पुरुष द्वार पर एकत्र हो गए। मानों वे एक नए दूल्हे का स्वागत कर रहे हों।

3. बहुत कठिनाई से वह उस भीड़ में से निकला और आश्रम के द्वार में प्रविष्ट हो गया।

4. तब उन्होंने अपना सिर मुंडवाया, जैसा कि परिव्राजक के लिए आवश्यक था। उसका चचेरा भाई महानाम परिव्राजक के योग्य वस्त्र और भिक्खापात्र ले आया था। सिद्धार्थ ने उन्हें पहन लिया।

5. **अपने शिष्यों की सहायता से भारद्वाज ने आवश्यक संस्कार किए और सिद्धार्थ गौतम के परिव्राजक बन जाने की घोषणा की।**

6. आश्रम में जो जनसमूह एकत्र हो गया था, वह असाधारण था, क्योंकि सिद्धार्थ गौतम की प्रव्रज्या की परिस्थितियां भी असाधारण थीं। जब राजकुमार आश्रम से बाहर निकला, जनसमूह भी उसके पीछे–पीछे हो लिया।

7. वह रुका और उन्हें संबोधित किया, "बहनों और भाइयों! मेरे पीछे–पीछे आने से कोई लाभ नहीं है। मैं शाक्यों और कोलियों के बीच का झगड़ा निपटा सकने में असफल रहा हूं। लेकिन यदि तुम समझौते के पक्ष में जनमत तैयार कर लो, तो तुम सफल हो सकते हो। इसलिए कृपा करके वापस लौट जाओ।" उनकी प्रार्थना सुनी तो भीड़ पीछे लौटने लगी।

8. जब सिद्धार्थ गौतम ने प्रव्रज्या ग्रहण की तो उसकी आयु केवल 29 वर्ष की थी।

9. लोग उसकी प्रशंसा करते थे और ठंडी सांस भर कहते थे, "यह अपने सम्बंधियों से इसलिए लड़ा ताकि पृथ्वी पर प्राणियों के लिए शांति और सद्भावना बनी रहे।"

10. "इसका यह स्वेच्छा से किया हुआ महान त्याग है। यह बहुत ही वीरता और साहस का कार्य है। संसार के इतिहास में इसकी उपमा नहीं मिलती है। यह शाक्यमुनि अथवा शाक्यसिंह कहलाने का अधिकारी है।"

11. शाक्य–कुमारी किसा गौतमी का कथन कितना सही था। सिद्धार्थ गौतम के सम्बंध में उसने कहा था, **"धन्य हैं वे माता–पिता जिन्होंने ऐसे पुत्र को जन्म दिया और धन्य है वह पत्नी जिसका ऐसा पति है।"**

11. शांति का समाचार

1. जब सिद्धार्थ गौतम राजगृह में ठहरे हुए थे, तब वहां दूसरे पांच परिव्राजक आए और उन्होंने भी सिद्धार्थ गौतम द्वारा अपने ठहरने के लिए बनाई गई कुटी के पास ही एक कुटी बना ली।

2. **उन पांच परिव्राजकों के नाम थे–कोण्डन्ञ (कौण्डिन्य), अस्सजि (अश्वजित), वप्प, महानाम तथा भद्दिय।**

3. वे भी सिद्धार्थ गौतम के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए थे और अचरज में थे कि किस कारण से उन्होंने प्रव्रज्या ले ली थी।

4. जब सिद्धार्थ गौतम ने उनके सामने वह सारी परिस्थिति स्पष्ट की जिसके

कारण वह प्रव्रजित हुए थे, तो पांच परिव्राजकों ने कहा, "हां, हमने यह सुना है। लेकिन क्या आप जानते हैं कि आपके चले आने के बाद वहां क्या हुआ है?", उन्होंने पूछा।

5. सिद्धार्थ ने उत्तर दिया, "नहीं।" तब उन्होंने उसे बताया कि कपिलवस्तु से उनके चले आने के बाद कोलियों से युद्ध ठानने के विरोध में शाक्यों में बड़ा आंदोलन छिड़ गया।

6. आंदोलन का यह परिणाम हुआ कि शाक्य संघ को एक सभा बुलाकर अपने निर्णय पर फिर से विचार करना पड़ा। उस समय बहुमत कोलियों से समझौता कर लेने के पक्ष में हो गया।

7. शाक्य संघ ने पांच शाक्यों को अपना दूत चुनने का निर्णय लिया और उन्हें यह काम सौंपा कि वे कोलियों के साथ संधि–वार्ता करें।

8. जब कोलियों को इसका पता चला तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भी अपने पांच कोलियों को चुना ताकि वे शाक्यों के दूतों के साथ संधि–वार्ता चलाएं।

9. "दोनों ओर के दूत आपस में मिले और तय किया कि मध्यस्थता के लिए एक स्थायी परिषद् की नियुक्ति की जाए जिसे अधिकार हो कि रोहिणी के जल के बंटवारे से सम्बंधित हर विवाद पर निर्णय ले और परिषद् का निर्णय दोनों पक्षों को मान्य हो। इस प्रकार युद्ध का खतरा शांति में परिणत हो गया।"

10. सिद्धार्थ ने उत्तर दिया, "इस शुभ समाचार से मुझे प्रसन्नता हुई है। यह मेरे लिए विजय है। लेकिन मैं वापस घर नहीं जाऊंगा। मुझे जाना भी नहीं चाहिए। मुझे परिव्राजक ही बने रहना चाहिए।"

12. समस्या की नई पृष्ठभूमि

1. कोलियों और शाक्यों के बीच शांति स्थापित हो जाने का समाचार पांच परिव्राजकों से प्राप्त होने पर सिद्धार्थ गौतम को बहुत बेचैनी हुई।

2. अकेले में वह गंभीरता से अपनी स्थिति पर सोचने लगा कि क्या अब भी परिव्राजक बने रहने का उसके लिए कोई औचित्य रह गया है।

3. गहराई से चिंतन करने पर उसने सोचा कि नहीं।

4. युद्ध की समस्या अनिवार्य तौर पर झगड़े की समस्या है। यह एक बड़ी समस्या का एक अंग मात्र है।

5. यह झगड़ा न केवल राजाओं और राष्ट्रों के बीच ही चल रहा है, बल्कि कुलीनों और ब्राह्मणों के बीच, गृहस्थों के बीच, मां और पुत्र के बीच, पिता और पुत्र के बीच, भाई और बहन के बीच और साथी–साथी के बीच जारी है।

6. राष्ट्रों के बीच संघर्ष तो कभी–कभी होता है लेकिन **वर्गों के बीच तो यह संघर्ष लगातार चलता ही रहता है। संसार में सभी दुखों और कष्टों का मूल कारण यही है।**

7. यह सत्य है कि युद्ध के कारण ही मैंने गृहत्याग किया था। यद्यपि शाक्यों और कोलियों के बीच युद्ध समाप्त हो गया है तो भी मैं घर वापस नहीं लौट सकता। मैं देख रहा हूं कि मेरी समस्या ने अब व्यापक रूप धारण कर लिया है। **मुझे सामाजिक संघर्ष की इस समस्या का हल खोजना है।**

8. "पुराने स्थापित परंपरागत दर्शन इस सामाजिक संघर्ष की समस्या का हल कहां तक बताते हैं ?"

9. **सिद्धार्थ गौतम हर परंपरा का स्वयं परीक्षण करने के लिए दृढ़ संकल्पित थे।**

अध्याय–2
नये प्रकाश की खोज में
1. तपश्चर्या का परीक्षण

1. सिद्धार्थ गौतम ने सांख्य–मार्ग तथा समाधि–मार्ग का परीक्षण कर लिया था। लेकिन वह तपश्चर्या का प्रयोग किए बिना ही भृगु का आश्रम छोड़ कर चले आए थे।
2. उरुवेला में उसे वे पांच परिव्राजक मिले, जिनसे उसकी भेंट राजगृह में हुई थी और उन्होंने शांति का समाचार लाकर सुनाया था। वे भी तपश्चर्या का अभ्यास कर रहे थे।
3. उन तपस्वियों ने उन्हें देखा और उन से साथ चलने के लिए कहा। सिद्धार्थ गौतम ने उनके साथ जाना स्वीकार कर लिया।
4. इसके बाद से वे आदरपूर्वक उसकी सेवा करने लगे और शिष्यों की तरह उसकी आज्ञा का पालन करने लगे। वे उसके प्रति बड़े विनम्र और आज्ञाकारी थे।
5. सिद्धार्थ गौतम की तपस्या तथा स्व–पीड़न की प्रक्रिया अत्यधिक कठोर थी।
6. गौतम एक दिन में एक ही फली खाकर दिन बिताने लगे; बाद में एक ही तिल का दाना फिर एक ही चावल का दाना प्रतिदिन खाकर रहने लगे।
7. जब वह एक दिन में केवल एक ही दाना खाकर गुजारा करने लगे, तो उनका शरीर बिल्कुल जर्जर हो गया।

2. तपश्चर्या का त्याग

1. सिद्धार्थ गौतम की तपश्चर्या और स्व–पीड़न (Mortification) का अभ्यास अत्यधिक कठोर प्रकार का था। ऐसा छः वर्ष के लंबे समय तक जारी रहा।
2. तब भी उन्हें कोई नया प्रकाश दिखाई नहीं दिया और वह संसार के दुख की समस्या के समाधान के निकट भी नहीं पहुंच पाए थे, जिस पर उनका मन केंद्रित था।
3. उन्होंने अपने मन में सोचा, "यह मनोभाव शून्यता की ओर ले जाने वाला मार्ग नहीं है, न ही प्रज्ञा और न ही मुक्ति का मार्ग है।
4. "कुछ इस संसार के सुख के निमित्त कष्ट उठाते हैं, कुछ दूसरे स्वर्ग–लाभ

के निमित्त परिश्रम करते हैं; सभी प्राणी आशा के शोक में पड़कर और अपने उद्देश्य को न प्राप्त कर, सुख को खोजते हुए निश्चित रूप से ही दुख में जा गिरते हैं।"

5. 'क्या शरीर को पीड़ा देना धर्म कहा जा सकता है?'

6. "क्योंकि मन की सत्ता से ही शरीर या तो कार्य करता है अथवा कार्य करना बंद कर देता है, इसलिए मात्र विचार (मन) को संयत करना ही लाभकारी है, बिना विचार के शरीर एक कुत्ते के समान है।"

7. "ऐसा व्यक्ति नए प्रकाश (ज्ञान) को प्राप्त नहीं कर सकता जिसका बल जाता रहा हो, जो भूख से निढाल हो, प्यासा तथा थका हो, थकावट के कारण जिसका चित्त एकाग्र न होता हो।"

8. **"जो पूर्ण रूप से शांत नहीं है, वह कैसे ऐसे उद्देश्य तक पहुंच सकता है जिसे वह केवल अपने चित्त (मन) द्वारा ही प्राप्त कर सकता है?**

9. "सच्ची शांति और चित्त की एकाग्रता शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति से ही ठीक प्रकार से प्राप्त की जाती हैं।"

10. **उस समय उरुवेला में सेनानी नाम का एक गृहपति रहता था। उसकी कन्या का नाम सुजाता था।**

11. सुजाता ने एक निग्रोध वृक्ष से मन्नत मान रखी थी कि यदि उसे पुत्र–लाभ होगा तो प्रति वर्ष उसे भेंट चढ़ाया करेगी।

12. उसकी इच्छा पूर्ण हो चुकी थी, इसलिए उसने अपनी पुण्णा (पूर्णा) नाम की दासी को 'पूजा–स्थली' तैयार करने के लिए भेजा ताकि वह भेंट चढ़ा सके।

13. सिद्धार्थ गौतम को निग्रोध वृक्ष के नीचे बैठा देख पुण्णा ने सोचा कि वह वृक्ष देवता थे जो स्वयं ही वृक्ष से उतर कर नीचे आ गए थे।

14. **सुजाता आई और उसने अपनी बनाई हुई खीर स्वर्ण–पात्र में सिद्धार्थ गौतम को अर्पित की।**

15. वह खीर का स्वर्ण–पात्र लेकर निरंजना नदी के किनारे गए और सुप्पतिट्ठित नाम के घाट पर स्नान करने के अनंतर भोजन ग्रहण किया।

16. इस प्रकार उनकी तपश्चर्या के परीक्षण का अंत हुआ।

17. जो पांच परिव्राजक सिद्धार्थ गौतम के साथ थे, वे उनसे रुष्ट हो गए क्योंकि उन्होंने तपस्वी तथा स्व–पीड़न के जीवन का परित्याग कर दिया था और वे घृणा से सिद्धार्थ गौतम को छोड़कर चले गए।

अध्याय–3

ज्ञान–प्राप्ति और नए मार्ग का दर्शन

1. सम्बोधि–प्राप्ति

1. ध्यान–साधना के समय के लिए सिद्धार्थ गौतम ने इतना पर्याप्त भोजन इकट्ठा कर लिया जो उनचास (49) दिनों तक चल सकता था।
2. मन को व्याकुल करने वाले बुरे विचारों का मूलोच्छेद कर सिद्धार्थ गौतम ने अब भोजन ग्रहण करके शक्ति प्राप्त की। इस प्रकार उन्होंने संबोधि प्राप्त करने के लक्ष्य से ध्यान करने के लिए अपने को तैयार कर लिया।
3. संबोधि–प्राप्ति के लिए सिद्धार्थ गौतम को चार सप्ताह तक लगातार ध्यान–मग्न रहना पड़ा। उन्होंने अंतिम संबोधि को चार चरणों में प्राप्त कर लिया।
4. पहली अवस्था में उन्होंने कारण और खोज पर विचार किया। एकांतवास ने उन्हें सरलता से इसे प्राप्त करने में सहायता दी।
5. दूसरी अवस्था में उन्होंने एकाग्रता को भी सम्मिलित किया।
6. तीसरी अवस्था में उन्होंने समभाव (Equanimity) तथा सचेतना (Mindfullness) से सहायता प्राप्त की।
7. चौथी और अंतिम अवस्था में उन्होंने निर्मलता को समभाव में तथा समचित्तता को सचेतना में शामिल कर लिया।
8. इस प्रकार जब चित्त एकाग्र, निर्मल, दोषरहित, दूषणरहित, ग्रहणशील, दक्ष, स्थिर, भावनारहित हो गया तो अपने उद्देश्य को भूले बिना, सिद्धार्थ गौतम ने अपना सारा ध्यान उस समस्या के समाधान पर केंद्रित किया जो उन्हें परेशान कर रही थी।
9. चौथे सप्ताह के अंतिम दिन की रात्रि में उन्हें ज्ञान की किरण दिखाई दी। उन्होंने जान लिया कि उनके सामने दो समस्याएं हैं–**पहली समस्या थी कि संसार में दुख है और दूसरी समस्या थी कि किस प्रकार इस दुख का अंत करके मानव–जाति को सुखी बनाया जाए।**

10. इस तरह चार सप्ताह तक लगातार ध्यान करने के बाद अंत में अंधकार समाप्त हुआ, प्रकाश उत्पन्न हुआ, अविद्या दूर हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ। उन्हें एक नया मार्ग दिखाई दिया।

2. नए धम्म का आविष्कार

1. उन्होंने विचार किया कि संसार में दुख और निराशा एक अटूट सत्य था।
2. लेकिन सिद्धार्थ गौतम की यह जानने में रुचि थी कि दुख को कैसे दूर किया जाए।
3. इसलिए उन्होंने अपना सारा ध्यान इसी एक प्रश्न को हल करने में लगाया कि दुख और निराशा को कैसे दूर किया जाए।
4. स्वाभाविक तौर पर **पहला प्रश्न** जो उन्होंने अपने आप से पूछा, वह था **"उस दुख और निराशा के कौन से कारण हैं, जिन्हें एक व्यक्ति भोगता है ?"**
5. उनका **दूसरा प्रश्न** था, **"दुख को कैसे दूर किया जाए?"**
6. **इन दोनों प्रश्नों का उन्हें सही–सही उत्तर मिल गया जो सम्मक संबोधि (सम्यक ज्ञान) कहलाता है।**
7. इसी कारण से **पीपल का वह वृक्ष** (जिसके नीचे बैठ कर सिद्धार्थ गौतम ने ज्ञान प्राप्त किया था) **बोधिवृक्ष** कहलाता है।

अध्याय–4

बुद्ध और उनके पूर्ववर्ती

1. बुद्ध और वैदिक ऋषि

1. वेद, मंत्रों अर्थात स्तोत्रों या स्तुतियों का संग्रह हैं। इन स्तोत्रों (ऋचाओं) का पाठ करने वालों को ऋषि कहते हैं।
2. ये मंत्र इंद्र, वरुण, अग्नि, सोम, ईशान, प्रजापति, ब्रह्मा, महद्धि, यम तथा अन्य देवताओं का आह्वान (प्रार्थनाएं) मात्र हैं।
3. **आह्वान (प्रार्थनाएं) बस शत्रुओं के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिए हैं, उपहार स्वरूप धन प्राप्ति के लिए हैं, भक्तों से भोजन, मांस और सुरा की भेंट स्वीकार करने के लिए हैं।**
4. वेदों में दर्शन की मात्रा अधिक नहीं है। लेकिन कुछ वैदिक ऋषि थे जो दार्शनिक ढंग की निराधार कल्पना को अपनाए हुए थे।
5. इन वैदिक दार्शनिकों की मुख्य समस्याएं थीं–संसार की उत्पत्ति कैसे हुई? अलग–अलग वस्तुओं की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? उनकी एकता और अस्तित्व क्यों है? किसने उत्पत्ति की और किसने व्यवस्था की? यह संसार किससे उत्पन्न हुआ और फिर किसमें विलीन हो जाएगा ?
6. **लेकिन उन मंत्रों में उन्हें ऐसा कुछ भी नहीं दिखा जो मानव के नैतिक उत्थान में सहायक हो।**
7. **बुद्ध की दृष्टि में वेद मरुभूमि के समान बेकार थे।**
8. **इसलिए बुद्ध ने वेद मंत्रों का बहिष्कार किया और उन्हें इस योग्य नहीं समझा कि उनसे कुछ सीखा या ग्रहण किया जाए।**
9. इसी प्रकार बुद्ध को वैदिक ऋषियों के दर्शन में भी कोई सार दिखाई नहीं दिया। वे (ऋषि) सत्य की खोज में थे। किंतु वे सत्य तक पहुंच नहीं पाए थे।
10. उनके सिद्धांत केवल मनोकल्पना की उड़ानें थीं, जो न ही तर्क और न ही यथार्थ पर आधारित थे। दर्शन के क्षेत्र में उनके योगदान ने किसी भी सामाजिक मूल्यों की उत्पत्ति नहीं की।
11. इसलिए उन्होंने वैदिक ऋषियों के दर्शन को बेकार जानकर उन्हें अस्वीकार कर दिया।

2. ब्राह्मण ग्रंथ

1. वेदों के बाद, वे धार्मिक ग्रंथ आते हैं जिन्हें ब्राह्मण ग्रंथ कहते हैं। ये दोनों ही पवित्र ग्रंथ माने जाते थे। वास्तव में ब्राह्मण ग्रंथ भी वेदों का ही एक भाग हैं। दोनों का साथ–साथ अध्ययन किया जाता था और उन्हें एक सामूहिक नाम श्रुति से जाना जाता था।
2. ब्राह्मणों का दर्शन चार धारणाओं पर आधारित था।
3. सब से पहली धारणा थी कि वेद न केवल पवित्र हैं, बल्कि वे भ्रमातीत (अचूक) हैं और उन पर प्रश्न–चिन्ह नहीं लगाया जा सकता।
4. ब्राह्मणी दर्शन की दूसरी धारणा थी कि आत्मा की मुक्ति अर्थात जन्म–मरण या संसरण से मुक्ति, वैदिक बलि तथा दूसरे धार्मिक अनुष्ठान और धर्म क्रियाओं और ब्राह्मणों को दान देने से संभव है।
5. ब्राह्मणों के पास केवल वेदों में दिया गया एक आदर्श धर्म का सिद्धांत ही नहीं था, बल्कि उनके पास एक आदर्श समाज का सिद्धांत भी था।
6. उनके इस आदर्श समाज के ढांचे का नाम था चातुर्वर्ण्य। यह वेदों से जुड़ा हुआ है और क्योंकि वेद दोष रहित (Infallible) हैं और उनके अधिकार पर किसी भी प्रकार का प्रश्न–चिन्ह नहीं लगाया जा सकता, इसलिए एक आदर्श समाज के नमूने के रूप में चातुर्वर्ण्य भी दोष रहित है और उस पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।
7. समाज का यह आदर्श कुछ नियमों पर आधारित था।
8. पहला नियम था कि समाज चार वर्णो में विभक्त होना चाहिए–(1) ब्राह्मण; (2) क्षत्रिय; (3) वैश्य; (4) शूद्र।
9. दूसरा नियम था कि इन चारों वर्णो में सामाजिक समानता नहीं हो सकती। इन सबको क्रमिक असमानता के नियम से परस्पर बाध्य रहना चाहिए।
10. ब्राह्मण सर्वोच्च हो। ब्राह्मणों के नीचे किंतु वैश्यों के ऊपर क्षत्रिय हो। क्षत्रियों के नीचे किंतु शूद्रों से ऊपर वैश्य हो और शूद्र सब के नीचे हो।
11. अधिकार और विशेष सुविधाओं के मामले में ये चार वर्ण एक दूसरे के समान नहीं थे। क्रमिक असमानता के नियम ही अधिकारों और सुविधाओं का निर्धारण करते थे।
12. चातुर्वर्ण्य के तीसरे नियम का सम्बंध पेशों अथवा जीविका के साधनों के बंटवारे से था। ब्राह्मण का पेशा था पढ़ना–पढ़ाना और धार्मिक संस्कार

कराना। क्षत्रिय का पेशा था युद्ध करना। वैश्य का पेशा था व्यापार। **शूद्र का पेशा था ऊपर के तीनों उच्च वर्णों की सेवा करना।** इन चारों वर्णों का यह विभाजन ऐसा नहीं था कि एक वर्ण किसी दूसरे वर्ण का पेशा कर सके। प्रत्येक वर्ण केवल अपना ही पेशा कर सकता था और कोई भी एक वर्ण किसी दूसरे के पेशे में अतिक्रमण नहीं कर सकता था।

13. चातुर्वर्ण्य का चौथा नियम शिक्षा के अधिकार से सम्बंधित था। चातुर्वर्ण्य के आदर्श के अनुसार केवल पहले तीन वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही शिक्षा के अधिकारी थे। शूद्रों का वर्ण शिक्षा के अधिकार से वंचित था। इस चातुर्वर्ण्य के नियम ने केवल शूद्रों को ही शिक्षित होने से वंचित नहीं किया था, बल्कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णो से सम्बंधित सभी स्त्रियों को भी शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया था।

14. एक पांचवां नियम भी था। इस के अनुसार मनुष्य के जीवन को चार अवस्थाओं में बांटा गया था। पहली अवस्था ब्रह्मचर्याश्रम कहलाती थी; दूसरी अवस्था गृहस्थाश्रम कहलाती थी; तीसरी अवस्था वानप्रस्थाश्रम कहलाती थी और चौथी अवस्था संन्यासाश्रम कहलाती थी।

15. प्रथम आश्रम का उद्देश्य था अध्ययन और शिक्षा। दूसरे आश्रम का उद्देश्य था वैवाहिक जीवन व्यतीत करना। तीसरे आश्रम का उद्देश्य था मनुष्य को वन–वासी जीवन से परिचित कराना– अर्थात बिना गृहत्याग किए पारिवारिक बंधनों से मुक्त हो जाने से परिचित होना। चौथे आश्रम का उद्देश्य था ईश्वर की खोज में निकलना और उसके साथ एकरूपता प्राप्त करना।

16. इन आश्रमों से तीनों ऊपरी वर्णों के पुरुष मात्र लाभान्वित हो सकते थे। शूद्रों और स्त्रियों के लिए पहला आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम वर्जित था। इसी प्रकार अंतिम आश्रम संन्यासाश्रम भी शूद्रों और स्त्रियों के लिए वर्जित था।

17. ऐसा था यह दिव्य आदर्श समाज का नमूना, जिसे चातुर्वर्ण्य (व्यवस्था) का नाम दिया गया था। ब्राह्मणों ने इस नियम को ऊंचे आदर्शवाद में बदल दिया था और इसमें कहीं कोई कमी न आने देते हुए इस आदर्श को प्राप्त कर लिया था।

18. **ब्राह्मणी दर्शन की एक चौथी अवधारणा कर्म का सिद्धांत था। यह आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धांत का एक भाग था। ब्राह्मणों का कर्म–वाद इस प्रश्न का उत्तर था : "जन्मांतर होने पर नए शरीर**

को लेकर आत्मा कहां नया जन्म ग्रहण करती है?" ब्राह्मणी दर्शन का उत्तर था कि "यह उसके पिछले जन्म के कर्मों पर निर्भर करता है।" दूसरे शब्दों में इसका यही अर्थ है कि यह उसके कर्मों पर निर्भर करता है।

19. **बुद्ध इस ब्राह्मणी धर्म के प्रथम सिद्धांत के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने ब्राह्मणों की इस धारणा या सिद्धांत का खंडन किया कि वेद अपौरुशेय हैं** और उनके प्राधिकार (Authority) पर किसी भी प्रकार का प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता।

20. उनकी दृष्टि में कोई बात गलती की संभावना से परे तथा अंतिम नहीं हो सकती। आवश्यकता के अनुसार समय–समय पर हर बात का पुनर्परीक्षण एवं पुनर्विचार होना चाहिए।

21. मनुष्य को सत्य और यथार्थ सत्य जानना ही चाहिए। बुद्ध के लिए विचार–स्वातंत्र्य सर्वाधिक महत्त्व की बात थी। और उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास था कि विचार–स्वातंत्र्य ही सत्य की खोज का एकमात्र मार्ग है।

22. वेदों की अपौरुषेयता का अर्थ था विचार–स्वातंत्र्य को सर्वथा अस्वीकार कर देना।

23. इन्हीं कारणों से ब्राह्मणी दर्शन की उक्त अवधारणा उनके लिए सर्वाधिक आपत्तिजनक थी।

24. यज्ञ–विरोधी लोग यह कह कर ब्राह्मणों का उपहास किया करते थे, "यदि कोई एक पशु की बलि देने से स्वर्ग जा सकता है, तो फिर वह स्वर्ग जाने के लिए अपने पिता की ही बलि क्यों नहीं देता? इस तरह वह स्वर्ग में जल्दी पहुंचेगा।"

25. बुद्ध इस मत से पूरे दिल से सहमत थे।

26. **बुद्ध की दृष्टि में चातुर्वर्ण्य का यह सिद्धांत उतना ही असंगत था जितना कि बलि देने का घृणित सिद्धांत।**

27. चातुर्वर्ण्य के नाम पर ब्राह्मणवाद ने जिस प्रकार के समाज–संगठन की स्थापना की, वह बुद्ध को सर्वथा अप्राकृतिक लगती थी। इसका वर्णाश्रित स्वरूप अनिवार्य था और मनमाना था। यह किसी के आदेश से रच दिए गए समाज के समान था। बुद्ध ने एक खुले और एक स्वतंत्र समाज को प्राथमिकता दी।

28. ब्राह्मणवाद की चातुर्वर्ण्य (व्यवस्था) एक अपरिवर्तनशील समाज–रचना थी। एक बार ब्राह्मण होने पर हमेशा के लिए ब्राह्मण। एक बार क्षत्रिय होने पर सदा के लिए क्षत्रिय। एक बार वैश्य होने पर सदा के लिए वैश्य और एक बार शूद्र होने पर सदा के लिए शूद्र। समाज रचना का आधार व्यक्ति का वह दर्जा था जो उसे जन्म के संयोग से प्राप्त होता था। **कोई भी घृणित पाप–कर्म उसे उसके दर्जे से गिरा नहीं सकता था, इसी प्रकार कोई भी पुण्य–कर्म किसी को ऊपर नहीं उठा सकता था।** योग्यता और विकास का कोई मूल्य नहीं था।

29. प्रत्येक समाज में असमानता का अस्तित्व होता है। लेकिन यह ब्राह्मणवाद से भिन्न है। ब्राह्मणवाद द्वारा प्रचारित असमानता का सिद्धांत, उसका ध ाार्मिक मान्य सिद्धांत है। यह असमानता यूं ही विकसित नहीं हो गई। **ब्राह्मणवाद समानता में विश्वास नहीं रखता। वास्तव में यह समानता के सिद्धांत का विरोधी है।**

30. ब्राह्मणवाद केवल असमानता से ही संतुष्ट नहीं था। **ब्राह्मणवाद के प्राण (आत्मा) क्रमिक असमानता में ही बसे हुए थे।**

31. बुद्ध ने सोचा कि समन्वय तथा मैत्री की भावना उत्पन्न करने के बजाय, यह क्रमिक असमानता समाज में आरोही (नीचे से ऊपर की ओर) क्रमिक घृणा की भावना पैदा कर देगी, उसी तरह दूसरी ओर अवरोही (ऊपर से नीचे की ओर) अवज्ञा (तिरस्कार) की भावना पैदा कर देगी, जिससे समाज में हमेशा संघर्ष बना रहेगा।

32. चारों वर्णों के पेशे भी निश्चित थे। चुनाव की स्वतंत्रता नहीं थी। इतना ही नहीं, ये पेशे दक्षता (Skill) के अनुसार नहीं, बल्कि जन्म के अनुसार निश्चित किए गए थे।

33. चातुर्वर्ण्य के नियमों की गंभीरता से समीक्षा करने पर बुद्ध इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ब्राह्मणवाद की सामाजिक व्यवस्था का दार्शनिक आधार यदि स्वार्थवश नहीं था, तो भी गलत अवश्य था।

34. **बुद्ध को यह स्पष्ट था कि वह व्यवस्था सभी का हित नहीं कर सकती और न ही यह सभी का कल्याण कर सकती है। वास्तव में इसकी जान बूझ कर रचना की गई ताकि बहुत से लोग (शूद्र), कुछ लोगों (ब्राह्मणों) के स्वार्थ की पूर्ति करते रहें। इसमें मनुष्य को स्वयंभू**

अतिमानव वर्ग (ब्राह्मणों) की सेवा के लिए बनाया गया था।

35. **कमजोरों को दबाने और उनका शोषण करने के उद्देश्य से इसकी रचना की गई थी ताकि उन्हे पूर्ण रूप से दासता में रखा जा सके।**

36. **बुद्ध ने सोचा कि ब्राह्मणों द्वारा कर्म का नियम इस प्रकार बनाया गया था ताकि विद्रोह की भावना को पूर्ण रूप से समाप्त किया जा सके। अपने दुख के लिए मनुष्य स्वयं ही जिम्मेवार है कोई और नहीं। विद्रोह इस कष्ट की स्थिति को बदल नहीं सकता था, क्योंकि उसके पूर्वजन्म के कर्म के कारण ही उसका कष्ट निश्चित था और उसी प्रकार उसके वर्तमान जीवन का भाग्य भी।**

37. शूद्र और स्त्रियों के दो वर्णों की मानवता को ब्राह्मणवाद ने बुरी तरह से विकलांग कर दिया था और उनमें इस व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने की शक्ति नहीं रही थी।

38. **उन्हें ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। परिणामस्वरूप उन पर थोपी गई अज्ञानता के कारण वे यह नहीं समझ पाए कि उनकी यह निम्नस्तर की हालत कैसे हुई। वे जान नहीं पाए कि ब्राह्मणवाद ने उनके जीवन को किस प्रकार पूर्णतः महत्त्वहीन कर दिया था। ब्राह्मणवाद के विरुद्ध विद्रोह करने के बजाय वे ब्राह्मणवाद के भक्त और समर्थक बन गए थे।**

39. स्वतंत्रता–प्राप्ति के लिए शस्त्र उठाने का अधिकार मनुष्य का अंतिम साधन है। लेकिन शूद्रों को शस्त्र धारण करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था।

40. **ब्राह्मणवाद के अधीन शूद्र स्वार्थी ब्राह्मणों, शक्तिशाली तथा घातक क्षत्रियों और धनी वैश्यों के षड़यंत्र के असहाय शिकार होकर रह गए।**

41. क्या इसमें परिवर्तन हो सकता था ? **बुद्ध जानते थे कि यह ईश्वर की बनाई हुई सामाजिक व्यवस्था बताई जाती है, इसलिए इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। इसे केवल समाप्त ही किया जा सकता है।**

42. इन्हीं कारणों से बुद्ध ने ब्राह्मणवाद को जीवन के सच्चे मार्ग का विरोधी मान कर इसे अस्वीकार कर दिया।

अध्याय–5

तुलना तथा विरोध

1. जिसे उन्होंने अस्वीकार किया

1. निम्नलिखित विचारों को उन्होंने अस्वीकार कर दिया–

(क) मैं कहां से आया हूं, किधर से आया हूं, मैं क्या हूं–इस प्रकार व्यर्थ की निराधार कल्पना को बेकार बताया।

(ख) उन्होंने आत्मा के अनधिकृत मत को अस्वीकार किया। उन्होंने आत्मा को न शरीर, न वेदनाएं, न संज्ञा, न संस्कार और न विज्ञान ही माना।

(ग) उन्होंने कुछ धार्मिक उपदेशकों द्वारा प्रतिपादित सभी उच्छेदवादी मतों का बहिष्कार किया।

(घ) उन्होंने इस सिद्धांत का खंडन किया कि ईश्वर ने मनुष्य का निर्माण किया था अथवा वह किसी ब्रह्म के शरीर में से निकला था।

(ड़) उन्होंने आत्मा के अस्तित्व को सदैव नकारा अथवा उसे अस्वीकार किया।

2. जिसे उन्होंने परिवर्तित किया

1. उन्होंने **कार्य–कारण** के महान नियम को उसके उपसिद्धांतों सहित (**प्रतीत्यसमुत्पाद** के रूप में) मान्य ठहराया।

2. उन्होंने जीवन के निराशाजनक भाग्यवादी दृष्टिकोण का खंडन किया और साथ ही इस मूर्खतापूर्ण दृष्टिकोण का भी खंडन किया कि किसी ईश्वर ने पहले से निश्चित कर दिया था कि मनुष्य और संसार के साथ क्या घटित होना है।

3. उन्होंने इस सिद्धांत को भी अस्वीकार कर दिया कि कुछ पूर्व जन्मों में किए गए कर्मों में दुख और कष्ट उत्पन्न करने की तथा वर्तमान कार्यों को दुर्बल (निष्क्रिय) बना देने की सामर्थ्य होती है। उन्होंने कर्म के इस निराशाजनक भाग्यवादी दृष्टिकोण का त्याग किया। **उन्होंने पुराने कर्म–वाद के स्थान पर एक अधिक वैज्ञानिक कर्म–सिद्धांत की स्थापना की।**

3. जिसे उन्होंने स्वीकार किया

1. **उनकी शिक्षा की पहली विशेषता इस बात को मानने में है कि मन ही सभी चीजों का केंद्र–बिंदु है।**

2. मन सभी प्रवृत्तियों का पूर्वगामी है। वह उन पर अधिकार रखता है, उन्हें उत्पन्न करता है। यदि मन को वश में कर लिया जाए तो सभी प्रवृत्तियां वश में हो जाती हैं।

3. मन ही सभी प्रवृत्तियों का प्रधान है। मन ही सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है। उन्हीं मानसिक प्रवृत्तियों द्वारा मन बना हुआ है।

4. इसलिए सब से पहले मन के विकास पर ध्यान देना है।

5. उन की शिक्षाओं की दूसरी विशेषता यह है कि मन ही उन सब अच्छाइयों और बुराइयों का मूल स्रोत है जो हमारे भीतर उत्पन्न होती हैं और जिनका हमें शिकार होना पड़ता है।

6. उनकी शिक्षाओं की तीसरी विशेषता है सभी पाप–कर्मों से दूर रहना।

7. **उनकी शिक्षाओं की चौथी विशेषता है कि वास्तविक धम्म धाम्मिक ग्रंथों में नहीं हैं, बल्कि धाम्मिक सिद्धांतों के पालन करने में है।**

8. क्या कोई कह सकता है कि बुद्ध का धम्म उनका स्वयं का आविष्कार (कृति) नहीं था ?

अध्याय–6
परिव्राजकों की धम्मदीक्षा
1. सारनाथ आगमन

1. अपने सिद्धांत का उपदेश देने का निर्णय करने के बाद बुद्ध ने अपने मन में प्रश्न किया, "मैं सर्वप्रथम किसे धम्मोपदेश दूं ?" उन्हें सबसे पहले आलार कालाम का ध्यान आया जिसे बुद्ध सादरपूर्वक विद्वान, बुद्धिमान, समझदार और काफी निर्मल मानते थे। बुद्ध ने विचार किया, "यह कैसा रहेगा, यदि मैं सर्वप्रथम उन्हें ही धम्मोपदेश दूं ?" लेकिन बुद्ध को पता चला कि आलार कालाम की मृत्यु हो चुकी थी।
2. **तब उन्हें अपने उन पांच साथियों का ध्यान आया जो तपश्चर्या करते समय निरंजना नदी के तट पर उनके साथ थे, और जो सिद्धार्थ गौतम द्वारा तपस्या और काय–क्लेश का पथ त्याग देने पर क्रोधित होकर उन्हें छोड़कर चले गए थे।**
3. उन्होंने उनके ठौर–ठिकाने का पता लगाया। जब उन्हें पता चला कि वे वाराणसी (सारनाथ) के इसिपतन मृगदाव में रह रहे थे, तो बुद्ध उनकी खोज में उधर ही चल दिए।
4. उन पांचों ने जब बुद्ध को आते देखा तो उन्होंने आपस में तय किया कि वे बुद्ध का स्वागत नहीं करेंगे।
5. लेकिन जब बुद्ध समीप पहुंचे तो वे पांचों परिव्राजक अपने निर्णय पर दृढ़ न रह सके। **बुद्ध के व्यक्तित्व ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि वे सभी अपने आसन से खड़े हो गए। एक ने बुद्ध का पात्र लिया, एक ने चीवर संभाला, एक ने आसन बिछाया और एक अन्य पांव धोने के लिए पानी ले आया।**
6. इस प्रकार जिन्होंने उपहास करने का सोचा था, उन्होंने भी सम्मान किया।

2. बुद्ध का प्रथम धम्मोपदेश

1. कुशल क्षेम की बातचीत हो चुकने के बाद परिव्राजकों ने बुद्ध से प्रश्न किया कि क्या अब भी तपश्चर्या तथा काय–क्लेश में उनका विश्वास था। बुद्ध का उत्तर नकारात्मक था।
2. बुद्ध ने कहा, दो सिरे (अति) की बातें थी, एक काम–भोग का जीवन और दूसरा काय–क्लेश का जीवन।

3. वे मध्यम–मार्ग (मज्झिम पटिपदा) को मानने वाले थे, जो कि न तो काम–भोग का मार्ग है और न काय–क्लेश का मार्ग है।

4. "इन दोनों सिरे की बातों से अलग एक मध्यम मार्ग है। यह समझ लो कि यही मार्ग है जिसका मैं उपदेश देता हूं।"

5. यह सुनकर परिव्राजक उस नए मार्ग के बारे में जानने के लिए अत्यंत अधीर हो उठे। उन्होंने बुद्ध से प्रार्थना की कि वे उन्हें विस्तार से बताएं।

6. बुद्ध ने बात आरंभ करते हुए बताया कि उनका मार्ग **जो सद्धम्म है, उसे आत्मा और परमात्मा से कुछ लेना–देना नहीं है।** उनके सद्धम्म को इस बात से कोई सरोकार नहीं कि मरने के बाद जीवन का क्या होता है। उनके सद्धम्म को कर्म–कांड के क्रिया–कलापों से भी कुछ लेना–देना नहीं है।

7. बुद्ध के धम्म का केंद्र–बिंदु मनुष्य है और इस पृथ्वी पर अपने जीवन काल में एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ सम्बंध का होना है।

8. बुद्ध ने कहा, यह उनका प्रथम आधारतत्त्व है।

9. उनका दूसरा आधारतत्त्व था कि प्राणी दुख, कष्ट और दरिद्रता में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। **संसार दुख से भरा है और धम्म का उद्देश्य मात्र यही है कि संसार के इस दुख को कैसे दूर किया जाए। इसके अतिरिक्त सद्धम्म और कुछ नहीं है।**

10. दुख के अस्तित्व की स्वीकृति और दुख को दूर करने का मार्ग दिखाना ही उनके धम्म का आधार है।

11. धम्म के लिए एकमात्र यही सही आधार और औचित्य हो सकता है। जो धर्म इस बात को स्वीकार नहीं करता, वह धर्म ही नहीं है।

12. "हे परिव्राजकों! वास्तव में जो भी श्रमण (धम्मोपदेशक) यह नहीं समझते कि संसार में दुख है और दुख को दूर करना ही धम्म की प्रमुख समस्या है, मेरे विचार में उन्हें श्रमण ही नहीं मानना चाहिए। न ही वे समझने वाले हैं और न ही यह जान पाए हैं कि इस जीवन में धम्म का सही अर्थ क्या है।"

13. तब बुद्ध ने उन्हें समझाया कि उनके धम्म के अनुसार यदि हर मनुष्य (1) निर्मलता के पथ पर चले, (2) धम्म परायणता के पथ पर चले, (3) शील–मार्ग पर चले, तो इससे सभी दुखों का अंत हो जाएगा।

3. बुद्ध का प्रथम धम्मोपदेश (क्रमशः) (निर्मलता का पथ)

1. तब परिव्राजकों ने बुद्ध से अपने धम्म की व्याख्या करने की प्रार्थना की।
2. तथागत बुद्ध ने सब से पहले उन्हें निर्मलता का पथ ही समझाया।
3. उन्होंने परिव्राजकों से कहा, **"निर्मलता का पथ यह सिखाता है कि जो मनुष्य अच्छा बनना चाहता है उसके लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन के आदर्शों का कोई मापदंड स्वीकार करे।**
4. "मेरे निर्मलता के पथ के अनुसार **अच्छे जीवन आदर्श के पांच मान्य मापदंड हैं**— (i) किसी की हत्या व हिंसा न करना, (ii) चोरी न करना अर्थात दूसरे की चीज को अपनी न बना लेना, (iii) व्यभिचार न करना, (iv) झूठ न बोलना और (v) नशीली वस्तुओं का सेवन न करना।
5. **"मेरा कहना है कि हर मनुष्य के लिए इन पांच शीलों को स्वीकार करना परमावश्यक है क्योंकि हर मनुष्य के लिए जीवन का कोई मापदंड होना चाहिए, जिससे वह अपने कर्म (अच्छाई—बुराई) को माप सके। और ये सिद्धांत मेरी शिक्षाओं के अनुसार जीवन की अच्छाई—बुराई के मापदंड हैं।**

4. बुद्ध का प्रथम धम्मोपदेश (क्रमशः) (आष्टांगिक मार्ग या सम्यक मार्ग)

1. इसके आगे बुद्ध ने उन परिव्राजकों को आष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया। बुद्ध ने कहा कि इस मार्ग के आठ अंग हैं।
2. बुद्ध ने सम्मा दिट्ठी (सम्यक दृष्टि) की व्याख्या से अपना उपदेश आरंभ किया, जो आष्टांगिक मार्ग का प्रथम और प्रधान अंग है।
3. "हे परिव्राजकों! तुम्हें इस बात का बोध होना चाहिए कि यह संसार एक कारागार है और मनुष्य इस कारागार में एक कारावासी (कैदी) है।
4. "यह कारागार अंधकार से भरा हुआ है।"
5. "वास्तव में बहुत अधिक लंबे समय तक इस अंधेरे में रहने के कारण मनुष्य न केवल अंधा हो गया है, बल्कि उसे इस बात में भी बहुत संदेह हो गया है कि प्रकाश नाम की ऐसी कोई अनोखी चीज भी कहीं अस्तित्व में हो सकती है।
6. "मन ही एक ऐसा साधन है, जिसके माध्यम से मनुष्य को प्रकाश की प्राप्ति हो सकती है।"

7. ”लेकिन इस उद्देश्य के लिए इन कारावासियों का मन एक उपयुक्त साधन नहीं है।”

8. **”क्योंकि मनुष्य में एक चीज है जिसे संकल्प शक्ति (मनोबल) कहा जाता है। जब मनुष्य के सम्मुख कोई उपयुक्त प्रयोजन का उदय हो जाता है, तो मनोबल को जाग्रत और क्रियाशील किया जा सकता है।”**

9. ”किस दिशा में इस मनोबल को लगाया जाए, यह देखने के लिए पर्याप्त प्रकाश मिलने पर आदमी उस मनोबल का मार्ग दर्शन कर सकता है और इस प्रकार बंधन मुक्त हो सकता है।”

10. ”इस प्रकार यद्यपि मनुष्य बंधन में है, तो भी वह स्वतंत्र हो सकता है। वह किसी भी क्षण ऐसा पहला कदम उठा सकता है, जो अंततः उसे स्वतंत्रता प्रदान करेगा।”

11. ”ऐसा इसलिए है, क्योंकि हम जिस किसी भी दिशा में अपने मन को ले जाना चाहें, हमारे लिए उस दिशा में ले जाना संभव है। यह मन ही है, जो हमें जीवन–रूपी कारागार का कैदी बनाता है और यह मन ही है जो हमें ऐसा बनाए रखता हैं”

12. ”लेकिन मन ने जो कुछ बनाया है, उसे मन ही नष्ट कर सकता है। यदि इसने मनुष्य को दास बनाया है तो ठीक दिशा दिखाने पर यह मनुष्य को स्वतंत्र भी कर सकता है।”

13. ”**सम्मा दिट्ठी** (सम्यक दृष्टि) का अर्थ है, कर्म–कांड के क्रिया–कलापों के प्रभाव में विश्वास न रखना और शास्त्रों की निर्मलता की मिथ्या–धारणा से मुक्त होना।”

14. ”सम्मा दिट्ठी (सम्यक दृष्टि) का अर्थ है, अंधविश्वास तथा अलौकिकता का त्याग करना।”

15. ”सम्मा दिट्ठी (सम्यक दृष्टि) का अर्थ है ऐसी सभी मिथ्या धारणाओं का त्याग करना, जो कल्पना मात्र हैं और जो यथार्थ अथवा अनुभव पर आधारित नहीं हैं।”

16. ”सम्मा दिट्ठी (सम्यक दृष्टि) के लिए स्वतंत्र मन और स्वतंत्र विचार आवश्यक हैं।”

17. **हर मनुष्य के कुछ उद्देश्य, आकांक्षाएं और महत्त्वाकांक्षाएं होती हैं।**

सम्मा संकप्पो (सम्यक संकल्प) यह शिक्षा देता है कि ऐसे उद्देश्य, आकांक्षाएं तथा महत्त्वाकांक्षाएं उच्च स्तर की एवं सराहनीय हों और निम्न स्तर की एवं अयोग्य न हों।

18. ''सम्मा वाचा (सम्यक वाणी) हमें शिक्षा देती है कि (1) मनुष्य केवल वही बोले जो सत्य है, (2) मनुष्य असत्य न बोले, (3) मनुष्य दूसरों की बुराई न करे, (4) मनुष्य पर–निंदा से दूर रहे, (5) मनुष्य किसी के लिए भी क्रोध ा और गाली–गलौज वाली भाषा का प्रयोग न करे, (6) मनुष्य सभी के साथ दया से भरी तथा विनम्र वाणी का व्यवहार करे, (7) किसी मनुष्य को व्यर्थ की, मूर्खतापूर्ण बातों में नहीं पड़ना चाहिए, बल्कि उसकी वाणी बुद्धिसंगत और सार्थक होनी चाहिए।"

19. "सम्मा कम्मन्तो (सम्यक कर्मांत) सही व्यवहार की शिक्षा देता है। **यह सिखाता है कि हमारे हर कार्य का आधार दूसरों की भावनाओं और अधिकारों का आदर होना चाहिए।"**

20. "सम्मा कम्मन्तो (सम्यक कर्मांत) का मापदंड क्या है? सम्यक कर्मांत का मापदंड है आचरण की धारा जो अस्तित्व के आधारभूत नियम के साथ समन्वित होनी चाहिए।"

21. "जब किसी मनुष्य के कार्य इन नियमों से समन्वय रखते हों, तो उन्हें सम्यक कर्म के अनुरूप ही समझना चाहिए।"

22. "प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका कमानी ही होती है। लेकिन अपनी जीविका कमाने के कुछ तरीके हैं और उन तरीकों में कुछ बुरे हैं और कुछ अच्छे। बुरे तरीके वे हैं, जो किसी को चोट पहुंचाते हैं अथवा किसी के साथ अन्याय करते हैं। अच्छे तरीके वे हैं जिनसे **मनुष्य बिना किसी को हानि पहुंचाए अथवा बिना किसी के साथ अन्याय किए अपनी जीविका कमाता है। यही सम्मा आजीवो (सम्यक आजीविका) है।"**

23. "सम्मा वायामो (**सम्यक व्यायाम–ठीक प्रयास**) अविद्या को नष्ट करने का प्रथम प्रयास है जो उस द्वार तक पहुंचाकर उसे खोलता है, जहां से उस दुखद कारागार से बाहर निकला जा सकता है।"

24. "सम्मा सति (सम्यक स्मृति) जागरूकता और विचारशीलता का आह्वान करती है। इसका अर्थ है **मन की सतत जागरूकता।** बुरी भावनाओं (विचारों) के विरुद्ध चित्त द्वारा निगरानी करना सम्यक स्मृति का दूसरा नाम है।"

25. "अकेली समाधि एक नकारात्मक स्थिति है, क्योंकि यह केवल संयोजनों को अस्थायी तौर पर निलंबित करती है। इसमें मन के लिए कोई प्रशिक्षण नहीं है। **सम्यक समाधि** सकारात्मक है। एकाग्रता के समय यह मन को एकाग्र करने के लिए प्रशिक्षित करती है और **अच्छे कर्म के लिए प्रेरित करती है।** यह संयोजनोत्पन्न बुरे कर्मों (बुरे कार्य और बुरे विचार) की ओर मन के आकर्षित होने की प्रवृत्ति को ही नष्ट कर देती है।"

26. **"सम्मा समाधि (सम्यक समाधि) मन को सदा अच्छे कर्म के बारे में सोचने के लिए अभ्यस्त करती है।** सम्यक समाधि मन को अच्छे कर्म करने के लिए अपेक्षित शक्ति देती है।"

5. बुद्ध का प्रथम धम्मोपदेश (क्रमशः) (शील का मार्ग) पारमिताएं

1. इसके पश्चात बुद्ध ने उन परिव्राजकों को **शील–पथ** के बारे में समझाया।
2. उन्होंने उन्हें बताया कि शील–पथ का अर्थ है इन सदगुणों का अभ्यास करना– (1) शील, (2) दान, (3) उपेक्षा, (4) नैष्क्रम्य, (5) वीरता, (6) क्षान्ति, (7) सत्य, (Succa) (8) अधिष्ठान, (9) करुणा और (10) मैत्री।
3. उन परिव्राजकों ने बुद्ध से इन सद्गुणों का सही अर्थ समझाने के लिए कहा।
4. तब बुद्ध ने उन्हें संतुष्ट करने के लिए समझाया–
5. **"शील** का अर्थ है नैतिक स्वभाव, बुरे कर्म न करने की मनोवृत्ति और अच्छे कर्म करने की मनोवृत्ति; बुराई (बुरे कर्म) करने में लज्जा करना। दंड के भय से बुरे कर्म से बचे रहना शील है। शील का अर्थ है बुरे कर्म से भय खाना।
6. **"नैष्क्रम्य** का अर्थ है सांसारिक काम–भोगों का त्याग।
7. **"दान** का अर्थ है बदले में किसी भी प्रकार की आशा किए बिना दूसरों की भलाई के लिए अपनी संपत्ति को ही नहीं, अपने रक्त, अपने शरीर के अंगों और यहां तक कि अपने प्राण तक को दूसरों को अर्पित कर देना।
8. **"वीरता** का अर्थ है सम्यक प्रयत्न। जो कुछ एक बार करने का निश्चय कर लिया अथवा जो कुछ करने का संकल्प कर लिया, उसे अपनी पूरी सामर्थ्य से करने का प्रयास करना और बिना उसे पूरा किए पीछे मुड़कर नहीं देखना।

9. **"क्षान्ति** का अर्थ है सहन शीलता। घृणा के बदले में घृणा न करना, इसका यही सार है। क्योंकि घृणा से घृणा कभी भी शांत नहीं होती। यह केवल सहन शीलता से ही शांत होती है।

10. **"सत्य** का अर्थ है सत्यवादी होना। मनुष्य को कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए। उसे सत्य और केवल सत्य ही बोलना चाहिए।

11. **"अधिष्ठान** का अर्थ है अपने उद्देश्य तक पहुंचने का दृढ़–संकल्प।

12. **"करुणा** का अर्थ है सभी प्राणियों के प्रति प्रेम भरी दया भावना।

13. **"मैत्री** का अर्थ है सभी प्राणियों के प्रति भ्रातृत्व–भावना रखना, न केवल मित्रों के प्रति ही, बल्कि शत्रुओं तक के प्रति भी; न केवल मनुष्य बल्कि सभी प्राणियों के प्रति भी।

14. **"उपेक्षा** (Detachment) का अर्थ है अनासक्ति, जो उदासीनता से भिन्न है। यह चित्त की वह अवस्था है, जिसमें प्रिय–अप्रिय कुछ नहीं है। फल कुछ भी हो उससे निरपेक्ष रहना और लक्ष्य की ओर बढ़ते रहना ही उपेक्षा है।

15. "मनुष्य को इन सद्‌गुणों का अपने पूरे सामर्थ्य के साथ अभ्यास करना चाहिए। इसीलिए उन्हें 'पारमिता' (गुणों की पराकाष्ठा) कहा गया है।"

6. बुद्ध का प्रथम धम्मोपदेश (समापन)

1. तब बुद्ध ने परिव्राजकों को इस प्रकार की चेतावनी देते हुए अपना प्रवचन समाप्त किया–

2. "हो सकता है कि तुम मेरे धम्म को निराशावादी धम्म कहो, क्योंकि यह मानव–जाति का ध्यान दुख के अस्तित्व की ओर दिलाता है। मेरा तुमसे बस यही कहना है कि मेरे धम्म के बारे में ऐसी धारणा का होना गलत होगा।

3. "निस्संदेह मेरा धम्म दुख के अस्तित्व को स्वीकार करता है, किंतु यह न भूलो कि यह उतना ही जोर उस दुख के दूर करने पर भी देता है।

4. "मेरे धम्म में आशा और उद्देश्य दोनों ही निहित हैं।

5. "इसका उद्देश्य है अविद्या का नाश, जिससे मेरा अभिप्राय है दुख के अस्तित्व के सम्बंध में अज्ञान (अविद्या) का होना।

6. ”इसमें आशा विद्यमान है क्योंकि यह मानवीय दुख के नाश का मार्ग बताता हैं।

7. ”तुम इससे सहमत हो कि नहीं ?” परिव्राजकों ने कहा, ”हां, हम सहमत हैं।”

7. परिव्राजकों की प्रतिक्रिया

1. उन पांचों परिव्राजकों ने तुरंत यह समझ लिया कि यह वास्तव में एक नया धम्म है। जीवन की समस्या के प्रति इस नए दृष्टिकोण से वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे सभी यह कहने में एकमत थे, ”संसार के इतिहास में इससे पहले किसी भी धर्म के संस्थापक ने कभी यह शिक्षा नहीं दी कि मानवीय दुख को पहचानना और स्वीकार करना धम्म का यथार्थ आधार है।

2. **”संसार के इतिहास में इससे पहले कभी किसी धर्म के संस्थापक ने यह शिक्षा नहीं दी कि संसार के इस दुख को दूर करना ही धम्म का वास्तविक उद्देश्य है।**

3. ”संसार के इतिहास में इससे पहले किसी ने भी कभी ऐसे धम्म की रूप–रेखा प्रस्तुत ही नहीं की, जिसका किसी रहस्य और (ईश्वरीय) प्रभुत्व से कोई सम्बंध नहीं हो, जिसके आदेश व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं के अध्ययन की देन हों और किसी ईश्वर की आज्ञाएं न हों।

4. उन्हें लगा कि बुद्ध के रूप में उन्हें एक ऐसे जीवन–सुधारक मिल गए थे, जिनका रोम–रोम नैतिकता की भावना से ओत–प्रोत था और जो अपने युग की बौद्धिक संस्कृति से सुपरिचित थे। जिनमें ऐसी मौलिकता एवं साहस था कि विरोधी विचारों की जानकारी के साथ वह इसी जीवन में मुक्ति के एक ऐसे मार्ग का प्रतिपादन कर सकते थे, जिससे मन का आंतरिक परिवर्तन निज–संस्कृति और निज–संयम द्वारा प्राप्त किया जा सकता था।

5. बुद्ध के लिए उनके मन में ऐसी असीम श्रद्धा उत्पन्न हुई कि उन्होंने उनके समक्ष तुरंत समर्पण कर दिया और प्रार्थना की कि वह उन्हें अपना शिष्य स्वीकार कर लें।

6. **बुद्ध ने कोण्डंञ, अस्सजि, वप्प, महानाम तथा भद्दिय को ’एहि भिक्खवे’ (भिक्खुओ, आओ) कहकर भिक्खु संघ में दीक्षित कर लिया। वे ’पंचवर्गीय भिक्खु’ नाम से प्रसिद्ध हुए।**

अध्याय–7

बुद्ध ने क्या शिक्षा दी ?

1. बुद्ध ने अपने ही धम्म में अपने लिए किसी स्थान का दावा नहीं किया

1. उन्होंने स्वयं को शुद्धोदन और महामाया का स्वाभाविक पुत्र होने के अतिरिक्त कभी कोई दूसरा दावा ही नहीं किया।
2. उन्होंने ईसा मसीह और मुहम्मद साहब की तरह मुक्ति की शर्त लगाकर अपने धम्म–शासन में अपने लिए कोई खास स्थान नहीं बनाया।
3. यही कारण है कि इतना अधिक ग्रंथसमूह रहते हुए भी हमें बुद्ध के व्यक्तिगत जीवन के बारे में इतनी कम जानकारी प्राप्त हैं।
4. बुद्ध और धम्म सर्वथा अलग–अलग थे। उनका अपना स्थान था, धम्म का अपना।
5. बुद्ध द्वारा स्वयं को धम्म से पृथक रखने का एक और उदाहरण है उनके द्वारा अपना उत्तराधिकारी बनाना अस्वीकार करना।
6. दो या तीन बार बुद्ध के अनुयायियों ने उनसे प्रार्थना की कि वे किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करें।
7. हर बार बुद्ध ने अस्वीकार कर दिया।
8. उनका उत्तर था, "धम्म ही स्वयं का उत्तराधिकारी होना चाहिए।"
9. "सिद्धांत को स्वतंत्र रूप से अपने पर ही निर्भर रहना चाहिए; किसी व्यक्ति के अधिकार के बल पर नहीं।"
10. "यदि सिद्धांत को किसी व्यक्ति के अधिकार पर निर्भर रहने की आवश्यकता है, तो फिर वह सिद्धांत ही नहीं।"
11. "यदि धम्म की प्रतिष्ठा के लिए हर बार इसके संस्थापक का नाम रटते रहने की आवश्यकता है, तो धम्म नहीं है।"
12. अपने धम्म को लेकर स्वयं अपने बारे में बुद्ध का यही दृष्टिकोण था।

2. बुद्ध ने मुक्ति का आश्वासन नहीं दिया। उन्होंने कहा कि मैं मार्गदाता हूं, मोक्षदाता नहीं

1. बहुत से धर्म "इल्हामी धर्म" माने जाते हैं, किंतु बुद्ध का धर्म 'इल्हामी धर्म' नहीं है।

2. बुद्ध ने कभी भी अपने को 'खुदा का पैगबंर' होने का दावा नहीं किया। यदि कभी किसी ने ऐसा समझा, तो बुद्ध ने उसका खंडन ही किया।

3. इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि **बुद्ध का धम्म एक खोज (Discovery) है।** इसलिए इसे किसी भी 'इल्हामी' धर्म से सर्वथा भिन्न समझा जाना चाहिए।

4. **बुद्ध का धम्म इन अर्थों में एक आविष्कार या खोज है, क्योंकि यह पृथ्वी पर मानवीय–जीवन की स्थिति के गंभीर अध्ययन का परिणाम है और जिन स्वाभाविक–प्रवृत्तियों (Instincts) को लेकर मनुष्य ने जन्म ग्रहण किया है उन्हें पूरी तरह समझ लेने का परिणाम है, और साथ ही उन प्रवृत्तियों को भी जिन्हें मनुष्य ने इतिहास और परंपराओं के परिणामस्वरूप जन्म दिया है, जो मानव के हित में नहीं है।**

5. **बुद्ध केवल मार्ग–दाता थे। अपनी मुक्ति के लिए हर किसी को स्वयं प्रयास करना होता है।**

6. **यहां यह संपूर्ण और सुस्पष्ट कथन है कि तथागत किसी को मुक्ति का आश्वासन नहीं देते, वे केवल मुक्ति–पथ के प्रदर्शक हैं।**

7. **बुद्ध के लिए 'मुक्ति' का अर्थ है 'निर्वाण', और 'निर्वाण' का अर्थ है वासनाओं पर नियंत्रण।**

3. बुद्ध ने अपने लिए अथवा अपने धम्म के लिए किसी प्रकार के दैवत्व का दावा नहीं किया। उनका धम्म मनुष्य के लिए एक मनुष्य द्वारा खोजा गया धम्म था। यह ईश्वरीय नहीं था।

1. उनका दावा इतना भर था कि वह भी मनुष्यों में से एक हैं और लोगों के लिए उनका संदेश एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य को दिया गया संदेश है।

2. उन्होंने कभी यह भी दावा नहीं किया कि उनके संदेश में कोई गलती हो ही नहीं सकती।

3. उनका दावा इतना ही था कि जहां तक उन्होंने समझा है, उनका उपदेश मुक्ति का सत्य–मार्ग है।

4. **इसका आधार संसार भर के मनुष्यों के जीवन का व्यापक अनुभव है।**

5. **उन्होंने कहा कि हर किसी को भी इस बात की स्वतंत्रता है कि वह इसके बारे में प्रश्न पूछे, परीक्षण करे और उस सत्य को प्राप्त करे जो इसमें है।**

6. **किसी भी दूसरे धर्म के संस्थापक ने अपने धर्म को इस प्रकार परीक्षण की कसौटी पर कसने की खुली चुनौती नहीं दी।**

अध्याय–8

धम्म क्या है ?

1. <u>जीवन की निर्मलता बनाए रखना धम्म है</u>

1. **"तीन तरह की निर्मलताएं हैं–**

   i शारीरिक–निर्मलता

   ii वाणी की निर्मलता

   iii मानसिक निर्मलता

2. शारीरिक निर्मलता क्या है ?"
3. "यहां एक मनुष्य जीव–हिंसा से विरत (विमुख) होता है, चोरी से विरत होता है, बुरे कर्मों से विरत होता है। इसे **शारीरिक–निर्मलता** कहते हैं।"
4. **"वाणी की निर्मलता** क्या है ?"
5. "यहां एक मनुष्य झूठ बोलने से विरत रहता है"
6. **"मानसिक निर्मलता** क्या है ?"
7. "यदि उसमें कामेच्छा की उत्पत्ति हुई रहती है तो वह जानता है कि मुझमें कामेच्छा उत्पन्न है। वह यह भी जानता है कि किस प्रकार इसकी उत्पत्ति होती है, किस प्रकार उसे त्यागा जाता है और किस प्रकार भविष्य में इसकी उत्पत्ति नहीं होती। यही 'मानसिक–निर्मलता' कहलाती है।"

(II)

1. **दुर्बलताएं पांच तरह की हैं,** जो ज्ञानार्जन में दुर्बलता का कारण होती हैं। कौन सी पांच ?
2. जीव–हिंसा, चोरी, कामाचार–मिथ्याचार, झूठ, शराब और नशीली वस्तुओं का सेवन जो मनुष्य को निकम्मा बनाते हैं।
3. ये पांच कारण हैं जो विफलता की ओर ले जाते हैं।
4. जब ज्ञानार्जन में **दुर्बलता के पांच कारण दूर हो जाते हैं, तो चार स्मृति–उपस्थानों की उत्पत्ति होनी चाहिए।**
5. यहां एक भिक्खु काया के प्रति **कायानुपस्सना** (Contemplating) करता हुआ विहार करता है; वह प्रयत्नशील, जागरूक, स्मृतिमान और लोक में विद्यमान लोभ तथा दौर्मनस्य (Discontent) को काबू में किए हुए होता है।

6. वह वेदनाओं के प्रति **वेदनानुपस्सी** हो विहार करता है।

7. वह चित्त के प्रति चित्तानुपस्सी हो विहार करता है।

8. वह चित्त में उत्पन्न होने वाले विचारों (धम्मों) के प्रति **धम्मानुपस्सी** हो विहार करता है; वह प्रयत्नशील, जागरूक, स्मृतिमान और लोक में विद्यमान लोभ तथा दौर्मनस्य को काबू में किए हुए होता है।

(III)

1. तीन घात (Failure) है –

i शील–घात।

ii चित्त–घात।

iii दृष्टि–घात।

2. शील–घात क्या है ? एक मनुष्य प्राणी–हिंसा करता है, चोरी करता है, काम–भोग सम्बंधी मिथ्याचरण करता है, झूठ बोलता है, चुगली करता है, कठोर बोलता है तथा व्यर्थ बोलता है। यह शील–घात कहलाता है।

3. चित्त–घात क्या है ?

4. एक मनुष्य लोभी होता है, दौर्मनस्य–युक्त होता है। यह चित्त–घात कहलाता है।

5. दृष्टि–घात क्या है ?

6. यहां कोई मनुष्य इस प्रकार की गलत–धारणा, मिथ्या–दृष्टि रखता है कि दान देने में, त्याग करने में कोई अच्छा कर्म नहीं; भले–बुरे कर्मों का कुछ फल नहीं होता। भिक्खुओं, इसे दृष्टि–घात कहते है।

7. भिक्खुओं ! **तीन लाभ हैं**–

i शील–लाभ।

ii चित्त–लाभ।

iii दृष्टि–लाभ।

8. शील–लाभ क्या है ?

9. एक मनुष्य प्राणी–हिंसा से विरत रहता है, चोरी करने से विरत रहता है; काम भोग सम्बंधी मिथ्याचार से विरत रहता है; कठोर बोलने से विरत रहता है और व्यर्थ बोलने से विरत रहता है। इसे शील–लाभ कहते है।

10. **चित्त–लाभ** क्या है ?

11. एक मनुष्य न लोभी होता है और न दौर्मनस्य–युक्त होता है। इसे चित्त–लाभ कहते हैं।

12. और **दृष्टि–लाभ** क्या है ?

13. यहां कोई मनुष्य इस प्रकार की गलत–धारणा, मिथ्या–धारणा नहीं रखता है कि दान देने में, त्याग करने में, परित्याग करने में कोई अच्छा कर्म नहीं, भले–बुरे कर्म का कुछ फल नहीं होता।

2. जीवन में पूर्णता प्राप्त करना धम्म है

1. **तीन पूर्णताएं** ये हैं।

2. शरीर की पूर्णता, वाणी की पूर्णता तथा मन की पूर्णता।

3. **पारमिताओं का विकास करना धम्म है।**

3. निर्वाण में रहना धम्म है

1. बुद्ध ने कहा है, "निर्वाण से बढ़कर सुखद कुछ नहीं है।"

2. **बुद्ध द्वारा बताई गई सभी शिक्षाओं में निर्वाण का प्रमुख स्थान है।**

3. निर्वाण क्या है ? जैसा कि बुद्ध ने समझाया है, निर्वाण का अर्थ उससे सर्वथा भिन्न है, जो उनके पूर्व के दार्शनिकों ने बताया है।

4. उनके पूर्व के दार्शनिकों की दृष्टि में मोक्ष का अर्थ था 'आत्मा' की मुक्ति।

5. मोक्ष की चार प्रकार के स्वरूपों में कल्पना की गई–(1) लौकिक, (खाओ, पिओ और मौज मनाओ); (2) यौगिक; (3) ब्राह्मणी (4) औपनिषदिक।

6. ब्राह्मणी और औपनिषदिक मोक्ष की परिकल्पना में एक समानता थी। मोक्ष की दोनों परिकल्पनाओं में 'आत्मा' की एक स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गई थी–यह सिद्धांत बुद्ध को अमान्य था। इसलिए बुद्ध को मोक्ष की ब्राह्मणी और औपनिषदिक परिकल्पना का खंडन करने में कोई कठिनाई नहीं थी।

7. बुद्ध के निर्वाण की परिकल्पना अपने पूर्व के दार्शनिकों की मोक्ष की संकल्पना से सर्वथा भिन्न है।

8. बुद्ध के निर्वाण की परिकल्पना के मूल में तीन धारणाएं हैं।

9. इनमें से एक तो यह है कि किसी भी प्राणी का सुख किसी 'आत्मा' की मुक्ति से भिन्न है।

10. दूसरी धारणा यह है संसार में जीवित रहते समय तक ही प्राणी का सुख है। किंतु 'आत्मा' की धारणा और मरणांतर 'आत्मा' की 'मुक्ति' का विचार बुद्ध के विचारों से सर्वथा अलग धारणा है।

11. तीसरी धारणा जो बुद्ध के निर्वाण की परिकल्पना का मूलाधार है, वह है सदा प्रज्वलित रहने वाली राग–द्वेषाग्नि (Passion) पर संयम रखने का अभ्यास ।

12. निर्वाण कैसे सुखद हो सकता है ? यह एक और प्रश्न है जिसका उत्तर अपेक्षित है।

13. **सामान्य धारणा यह है कि अभाव के कारण मनुष्य दुखी है। लेकिन हमेशा ऐसा सत्य नहीं होता है। मनुष्य तब भी दुखी रहता है, जब उसके पास सब कुछ पर्याप्त हो।**

14. **दुख तो लोभ का परिणाम है और लोभ उन दोनों के लिए हानिकारक होता है, जिनके पास नहीं है और जिनके पास है।**

15. **राग–द्वेष (Passion) का शिकार हो जाना ही मनुष्य को दुखी बनाता है। राग–द्वेष को बंधन कहा गया है जो मनुष्य को निर्वाण तक नहीं पहुंचने देते। ज्यों ही मनुष्य राग–द्वेष से मुक्त हो जाता है, वह निर्वाण को प्राप्त करना जान जाता है और उसके लिए निर्वाण–पथ खुल जाता है।**

16. बुद्ध के विश्लेषण के अनुसार ये संयोजन (बंधन) तीन वर्गों के अंतर्गत आते हैं–

17. पहला वर्ग वह है जिसका सम्बंध हर प्रकार की तृष्णा से अथवा लगाव से है, जैसे कामवासना, आसक्ति और लोभ।

18. दूसरा वर्ग वह है जिसका सम्बंध सभी प्रकार की वितृष्णा (Antipathy) से है–जैसे घृणा, क्रोध, उत्पीड़न अथवा असंगति (दोष)

19. तीसरा वर्ग वह है, जिसका सम्बंध सभी तरह की अविद्या से है–जैसे मोह, उदासी और मूढ़ता (अविद्या)।

20. पहले और दूसरे का सम्बंध मनोविकार से है और मनुष्य की उस दृष्टिकोण एवं भावना से है जो दूसरों के प्रति है, जबकि तीसरी (मोह) अग्नि का सम्बंध उन सभी विकारों से है जो सत्य से अलग हैं।

21. बुद्ध के निर्वाण के सिद्धांत के बारे में कुछ भ्रांतियां हैं।
22. शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'निर्वाण' शब्द का अर्थ है, बुझ जाना।
23. शब्द की इस व्युत्पत्ति के मूल अर्थ को लेकर आलोचकों ने 'निर्वाण' के सिद्धांत को निरर्थक बना दिया है।
24. उनका मानना है कि निर्वाण का अर्थ है सभी मानवी–भावनाओं का बुझ जाना, जो मृत्यु के समान हैं।
25. इस प्रकार के अर्थ द्वारा उन्होंने निर्वाण के सिद्धांत का उपहास बनाने की कोशिश की है।
26. **जो कोई भी इस 'अग्नि–स्कंधोपम सुत्त' की भाषा पर विचार करेगा, उसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि निर्वाण का इस प्रकार का अर्थ कदापि नहीं है।**
27. इस धम्मोदेश में यह नहीं कहा गया कि जीवन जल रहा है और बुझ जाना मृत्यु है। इसमें यह कहा गया है कि रागाग्नि जल रही है, द्वेषाग्नि जल रही है तथा मोहाग्नि जल रही है।
28. दूसरी बात यह है कि आलोचक 'निर्वाण' और 'परिनिर्वाण' में भेद करना भी भूल गए हैं।
29. जैसा कि उदान में कहा गया है, "जब शरीर के महाभूत बिखर जाते हैं, तब परिनिर्वाण होता है, सभी संज्ञाएं रूक जाती हैं, सभी वेदनाओं का नाश हो जाता है, सभी प्रकार की प्रक्रिया बंद हो जाती हैं और चेतना जाती रहती है।" इस प्रकार परिनिर्वाण का अर्थ है पूरी तरह बुझ जाना।
30. निर्वाण का कभी भी यह अर्थ नहीं हो सकता। **निर्वाण का अर्थ है अपनी भावनाओं पर पर्याप्त संयम रखना, जिससे मनुष्य धम्म के मार्ग पर चलने के योग्य बन सके। इसका अतिरिक्त और कोई दूसरा आशय नहीं है।**
31. राध को समझाते हुए स्वयं बुद्ध ने यह स्पष्ट किया था कि **सदाचार–पूर्ण जीवन का ही दूसरा नाम निर्वाण है।**
32. तथागत ने उत्तर दिया, **"निर्वाण का अर्थ है वासनाओं (Passion) से मुक्ति।"**
33. "लेकिन भंते! निर्वाण का उद्देश्य क्या है ?"

34. "राध! **निर्वाण प्राप्ति से सदाचारपूर्ण जीवन जिया जाता है। जीवन का लक्ष्य निर्वाण ही है। निर्वाण ही ध्येय है।"**

35. **"निर्वाण श्रेष्ठ आश्टांगिक–मार्ग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"**

36. निर्वाण के मूल में जो विचार है, वह यही है कि यह सदाचरण का पथ है। किसी को भी निर्वाण का कुछ और अर्थ नहीं लगाना चाहिए।

4. तृष्णा का त्याग धम्म है

1. धम्मपद में बुद्ध ने कहा है, "आरोग्य से बढ़कर लाभ नहीं, संतोष से बढ़कर धन नही।"

2. **यहां संतोष का अर्थ बेचारगी अथा परिस्थिति के सामने झुक जाना नहीं समझा जाना चाहिए।**

3. ऐसा समझ बैठना बुद्ध की दूसरी शिक्षाओं के सर्वथा प्रतिकूल होगा।

4. बुद्ध ने ऐसा कहीं नहीं कहा कि "धन्य हैं वे जो गरीब हैं।"

5. बुद्ध ने यह कहीं नहीं कहा कि "जो पीड़ित हैं, उन्हें अपनी परिस्थिति बदलने का प्रयास नहीं करना चाहिए।"

6. अपितु दूसरी ओर उन्होंने यह कहा है कि **"ऐश्वर्य' का स्वागत है, और उपेक्षावान होकर कश्ट सहते रहने के स्थान पर वीरता, उत्साहपूर्वक परिस्थिति को बदलने का प्रयास करने का उन्होंने उपदेश दिया है।**

7. जब बुद्ध ने यह कहा कि 'संतोष सबसे बड़ा धन है' तो उनके कहने का अभिप्राय यही था कि मनुष्य को लोभ के वशीभूत नहीं होना चाहिए जिसकी कोई सीमा नहीं।

5. यह मानना कि सभी मिश्रित (संयुक्त) पदार्थ अनित्य हैं, धम्म है

1. अनित्यता –इस सिद्धांत के तीन पहलू हैं।

2. अनेक तत्त्वों के मेल से बने हुए पदार्थ अनित्य हैं।

3. व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक प्राणी अनित्य है।

4. प्रतीत्य–समुत्पन्न वस्तुओं का 'स्व–तत्त्व' अनित्य है।

5. अनेक तत्त्वों के मेल से बने पदार्थो की अनित्यता की बात **महान बौद्ध दार्शनिक असंग** ने अच्छी तरह समझाई है।

6. असंग कहते हैं, "सभी पदार्थ हेतु तथा प्रत्ययों से उत्पन्न हैं और उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। जब हेतु–प्रत्ययों का उच्छेद हो जाता है, तो पदार्थ विनाश को प्राप्त होते हैं।

7. **"प्राणी का शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु नाम के चार महाभूतों से बना है और जब इन चारों महाभूतों का पृथक्करण हो जाता है, तो प्राणी नहीं रहता।**

8. "अनेक तत्त्वों के मेल से बनी हुई चीजें अनित्य होने का यही अभिप्राय है।"

9. जीवित प्राणी की अनित्यता की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या यही है कि वह है नहीं, वह हो रहा है।

10. इस अर्थ में भूतकाल का प्राणी अपना जीवन व्यतीत कर चुका, न वह वर्तमान में रह रहा है और न भविष्य में रहेगा। भविष्यत काल का प्राणी रहेगा, लेकिन न रहा है और न रहता है; वर्तमान काल का प्राणी रहता है, लेकिन न रहा है और न रहेगा।

11. संक्षेप यही है कि मानव निरंतर परिवर्तनशील है, निरंतर संवर्धनशील (Growing) है। वह अपने जीवन के दो भिन्न क्षणों में भी वही नहीं है।

12. बुद्ध का यह उपदेश था कि सभी पदार्थ अनित्य हैं।

13. बुद्ध के इस सिद्धांत से हमें क्या शिक्षा मिलती है ? यह अधिक महत्त्व का प्रश्न है।

14. **इस अनित्यता के सिद्धांत की शिक्षा बहुत सरल है। किसी भी पदार्थ के प्रति आसक्ति मत रखो।**

6. कर्म को नैतिक–व्यवस्था का उपकरण (साधन) मानना, धम्म है

1. भौतिक संसार में एक प्रकार का नियम है। निम्नलिखित तथ्यों से यह सिद्ध हो जाता है।

2. आकाश के नक्षत्रों के चलन एवं कार्य में एक प्रकार का नियम है।

3. एक प्रकार के नियम के अनुसार ही ऋतुएं नियमित रूप से आती और जाती हैं।

4. एक प्रकार के नियम के अनुसार ही बीजों से वृक्ष उत्पन्न होते हैं, वृक्षों में फल लगते हैं और फलों से फिर बीज प्राप्त होते हैं।

5. **बौद्ध परिभाषा में ये नियम 'बीज नियम' तथा 'ऋतु–नियम' कहलाते हैं।**
6. इस प्रकार क्या समाज में भी कोई नैतिक क्रम है ? यदि है तो यह कैसे उत्पन्न होता है ? इस का संरक्षण कैसे होता है ?
7. जो 'ईश्वर' में विश्वास रखते हैं, उन्हें इस प्रश्न का उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं है। उनका उत्तर सरल है।
8. उनका कहना है कि संसार का नैतिक क्रम दैवी विधान द्वारा संरक्षित है। ईश्वर ने संसार की रचना की है और ईश्वर ही संसार का श्रेष्ठ कर्ता–धर्ता है। वही भौतिक तथा नैतिक नियमों का रचयिता भी है।
9. **"संसार का नैतिक क्रम कैसे संरक्षित है" इस प्रश्न का उत्तर जो बुद्ध ने दिया है, वह सर्वथा भिन्न है।**
10. **तथागत का उत्तर बहुत सरल है। "यह कर्म का नियम है, ईश्वर नहीं जो विश्व के नैतिक क्रम को बनाए रखता है।" इस प्रश्न का बुद्ध ने यही उत्तर दिया।**
11. "विश्व का नैतिक नियम अच्छा हो सकता है अथवा बुरा भी, लेकिन बुद्ध के अनुसार नैतिक नियम मनुष्य पर निर्भर करता है और किसी अन्य पर नहीं।"
12. **'कर्म' का अर्थ है मुनष्य द्वारा किया जाने वाला कार्य (कर्म) और 'विपाक'(फल) का अर्थ उसका परिणाम है।** यदि नैतिक क्रम बुरा है तो इसका अर्थ है कि मनुष्य बुरा (अकुशल) कर्म करता है; यदि नैतिक क्रम अच्छा हो तो इसका अर्थ है कि मनुष्य अच्छा (कुशल) कर्म करता है।
13. **यही कारण है कि बुद्ध के धम्म में नैतिकता को वही स्थान प्राप्त है, जो अन्य धर्मों में 'ईश्वर' को है।**
14. **'कर्म–नियम' का** सम्बंध केवल विश्व के नैतिक क्रम के प्रश्न से जुड़ा है। इसका **व्यक्ति के भाग्यशाली होने अथवा अभाग्यशाली होने से कोई सम्बंध नहीं है।**

अध्याय–9

अधम्म क्या है ?

1. <u>परा–प्राकृतिक (Super Natural) में विश्वास धम्म नहीं है</u>

1. जब कोई घटना घटती है, मानव हमेशा यह जानना चाहता है कि यह घटना कैसे घटी। इसका कारण क्या है ?
2. बड़ा सरल और सामान्य उत्तर है कि घटना किसी परा–प्राकृतिक **(Super Natural)** कारण से घटी जिसे बहुधा **'चमत्कार'** भी कहा जाता है।
3. **बुद्ध ने इस प्रकार के सिद्धांतों का खंडन किया। उनका मानना था कि प्रत्येक घटना का कोई कारण होता है, और वह कारण किसी मानवीय कार्य अथवा प्राकृतिक नियम का परिणाम होता है।**
4. **यदि मनुष्य स्वतंत्र है, तो हर घटना का या तो कोई मानवी अथवा प्राकृतिक कारण होना चाहिए। कोई घटना ऐसी हो ही नहीं सकती जिसका परा–प्राकृतिक कारण हो।**
5. **यह हो सकता है कि मनुष्य किसी घटना के वास्तविक कारण का पता न लगा सके। लेकिन यदि वह बुद्धिमान है तो वह एक न एक दिन इसका पता लगा ही लेगा।**
6. परा–प्राकृतिक–वाद का खंडन करने में बुद्ध के तीन हेतु (उद्देश्य) थे–
7. उनका पहला हेतु था मनुष्य को विवेकपूर्ण मार्ग की ओर ले जाना।
8. उनका दूसरा हेतु था मनुष्य को सत्य की खोज में जाने के लिए स्वतंत्र करना।
9. उनका तीसरा उद्देश्य था मिथ्या–विश्वास के प्रबल–कारण की जड़ को काट देना, क्योंकि इसी के परिणामस्वरूप मनुष्य की खोजी प्रवृत्ति की हत्या हो जाती है।
10. **यही बुद्ध धम्म का कर्म–सिद्धांत अथवा 'हेतु–वाद' (Causation) कहलाता है।**
11. यह कर्म–सिद्धांत और 'हेतु–वाद' बौद्ध धम्म का मुख्य सिद्धांत है। यह बुद्धिवाद की शिक्षा देता है और बौद्ध धम्म यदि बुद्धिवादी धम्म नहीं है तो फिर कुछ भी नहीं है।

12. **यही कारण है कि परा–प्राकृतिक की पूजा धम्म नहीं है।**

2. <u>ईश्वर में विश्वास धम्म का आवश्यक अंग नहीं है</u>

1. इस संसार का किसने निर्माण किया, यह एक सामान्य प्रश्न है। इस संसार को ईश्वर ने बनाया, यह भी इस प्रश्न का वैसा ही सामान्य उत्तर है।
2. ब्राह्मणी योजना में इस ईश्वर के अनेक नाम हैं, जैसे प्रजापति, ईश्वर, ब्रह्मा या महाब्रह्मा।
3. जो लोग 'ईश्वर' में विश्वास रखते हैं, वे उसे सर्व–शक्तिमान, सर्व–व्यापक तथा सर्व–अंतर्यामी (सर्वज्ञ) कहते हैं।
4. बुद्ध ने कहा कि ईश्वर पर आश्रित धर्म निराधार कल्पना है।
5. इसलिए ईश्वर पर आश्रित धर्म को मानने का कोई लाभ नहीं है।
6. इससे केवल अंधविश्वास उत्पन्न होता है।
7. उनका तर्क था कि ईश्वर के अस्तित्व का सिद्धांत सत्य पर आधारित नहीं है।

3. <u>ब्रह्म में लीनता पर आधारित धर्म मिथ्या धम्म है</u>

1. जब बुद्ध अपने धम्म का प्रचार कर रहे थे, उस समय एक अन्य मत प्रचलन में था, जिसे 'वेदांत' कहा जाता था।
2. इस धर्म के सिद्धांत थोड़े से हैं और सरल हैं।
3. इस विश्व की पृष्ठ–भूमि में जीवन का एक सर्व–व्यापक सामान्य सिद्धांत विद्यमान है जिसे 'ब्रह्म' या 'ब्रह्मन्' कहा जाता है।
4. यह 'ब्रह्म' एक वास्तविकता है।
5. 'आत्मा' अथवा 'प्रत्येक आत्मा' वही है, जिसे ब्रह्म कहते हैं।
6. मनुष्य का मोक्ष आत्मा को ब्रह्म में लीन कर लेने पर आधारित है। यह दूसरा सिद्धांत है।
7. ब्रह्म में इस लीनता को आत्मा यह मानकर प्राप्त कर सकती है कि वह स्वयं भी वही है जो ब्रह्म है।
8. और आत्मा को इस बात की अनुभूति कराना कि वह स्वयं ही ब्रह्म है, इसका यही मार्ग है कि संसार का त्याग कर दिया जाए।
9. यही सिद्धांत 'वेदांत' कहलाता है।

10. बुद्ध के मन में इस सिद्धांत के लिए कोई आदर नहीं था। उनको लगता था कि इसका आधार ही मिथ्या है, इसकी कुछ उपयोगिता नहीं है, और इसलिए यह अपनाने योग्य नहीं है।

4. आत्मा में विश्वास धम्म नहीं है

1. बुद्ध ने कहा कि आत्मा पर आधारित धर्म कल्पनाश्रित धर्म है।
2. आज तक किसी ने भी 'आत्मा' को नहीं देखा है, और न ही उससे बातचीत की है।
3. आत्मा अज्ञात है, अदृश्य है।
4. जो चीज वास्तव में अस्तित्व में है वह मन या चित्त है। मन तो आत्मा से भिन्न है।
5. तथागत ने कहा कि 'आत्मा' में विश्वास करना अनुपयोगी है।
6. **इसलिए जो धर्म 'आत्मा' पर आश्रित है, वह अपनाने योग्य नहीं है।**
7. ऐसा धर्म केवल अंध–विश्वास ही पैदा करता है।
8. **क्या बुद्ध 'आत्मा' में विश्वास रखते थे ? नहीं, बिलकुल नहीं। 'आत्मा' के सम्बंध में उनका मत 'अनात्मवाद' कहलाता है अर्थात कोई आत्मा नहीं।**
9. उनका तर्क था कि 'आत्मा' के अस्तित्व के बारे में चर्चा उतनी ही व्यर्थ और अनुपयोगी है, जितनी 'परमात्मा' की चर्चा।
10. उनका तर्क था कि **'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास करना सम्यक दृष्टि के विकास में उतना ही बाधक है, जितना 'परमात्मा' के अस्तित्व में विश्वास करना।**
11. उनका तर्क था कि 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास भी उतना ही अंध–विश्वास का आधार है, जितना 'परमात्मा' में विश्वास। यथार्थ में उनकी सम्मति में **'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास करना 'परमात्मा' में विश्वास करने की अपेक्षा और भी अधिक खतरनाक है, क्योंकि यह पुरोहित वर्ग को जन्म देता है, यह अंध–विश्वास का मूल है, और यह मनुष्य के जन्म से मरण तक उसके समस्त जीवन पर पुरोहित वर्ग का नियंत्रण स्थापित कर देता है।**

12. **ये सभी मत एकदम गलत हैं,** क्योंकि महाली को बुद्ध ने स्पष्ट रूप से निश्चित शब्दों में यह कहा था कि **'आत्मा' नाम का कोई पदार्थ नहीं है। यही कारण है कि 'आत्मा' के सम्बंध में तथागत का मत 'अनात्मवाद' (Non-Soul) कहलाता है।**

5. बलि (यज्ञ–कर्म) में विश्वास धम्म नहीं है

1. ब्राह्मणी धर्म बलि कर्म (यज्ञ) पर आधारित था।
2. कुछ बलि कर्मों का वर्गीकरण 'नित्य' कहलाता था और कुछ का 'नैमित्तिक' कहलाता था।
3. 'नित्य' बलि कर्म एक बाध्यता थी, जिसे करना अनिवार्य था चाहे उससे कोई फल मिल पाता अथवा नहीं।
4. 'नैमित्तिक' बलि कर्म उस समय किए जाते थे जब यजमान किसी सांसारिक लाभ की प्राप्ति के निमित्त ऐसे बलि कर्म कराता था।
5. ब्राह्मणी बलि कर्म में सुरा–पान, पशुओं की बलि और आमोद–प्रमोद रहता था।
6. तब भी ऐसे बलि कर्म 'धार्मिक कृत्य' समझे जाते थे।
7. बलि कर्मों पर आधारित धर्म को बुद्ध ने अपनाने योग्य नहीं समझा।

6. धम्म की पुस्तकों का अध्ययन मात्र धम्म नहीं है

1. **ब्राह्मणों ने सारा जोर (अपने लिए) 'विद्या' पर दिया है।** उन्होंने शिक्षा दी कि 'विद्या' ही प्रत्येक चीज का आरंभ और अंत है। इससे आगे और कुछ ध्यान देने योग्य नहीं है।
2. इसके विरुद्ध **बुद्ध सभी के लिए 'विद्या' के पक्षधर थे।** इसके अतिरिक्त उन्हें इस बात की चिंता थी कि 'विद्या' प्राप्त करके मनुष्य उसका क्या उपयोग करता है। 'विद्या' केवल विद्या के लिए नहीं थी।
3. **परिणामस्वरूप वे इस बात पर विशेष जोर देते थे कि जिसे ज्ञान है, उसमें शील भी होना चाहिए। बिना 'शील' की 'विद्या' अत्यंत खतरनाक थी।**
4. इसके बाद तथागत ने कहा–**"एक मनुष्य अनेक ग्रंथों का वाचन कर सकता है, लेकिन यदि वह उन्हें समझा नहीं सकता तो उसके वाचन**

से क्या लाभ है ? धम्म के एक ही पद को जानना और तदनुसार चलना श्रेष्ठ ज्ञान का मार्ग है।"

7. धर्म–ग्रंथों को गलती की संभावना से परे मानना धम्म नहीं है

1. ब्राह्मणों की घोषणा थी कि वेद न केवल पवित्र ग्रंथ ही हैं, बल्कि वे स्वतः प्रमाण भी हैं।
2. ब्राह्मणों ने वेदों के स्वतः प्रमाण होने की ही घोषणा नहीं की, बल्कि उन्होंने वेदों को गलती की संभावना से परे भी माना।
3. इस विषय में बुद्ध ब्राह्मणों के मत से सर्वथा विरोधी मत रखते थे।
4. उन्होंने वेदों को पवित्र मानने से इंकार किया। उन्होंने वेदों को स्वतः प्रमाण नहीं माना। उन्होंने वेदों को गलती की संभावनाओं से परे नहीं माना।
5. **'तेविज्ज सुत्त' में बुद्ध ने वेदों को जलविहीन मरुभूमि एवं पथविहीन जंगल कहा है, जो वास्तव में सर्वनाश है। जिस मनुष्य में कुछ बौद्धिक तथा नैतिक प्यास है, वह वेदों के पास जाकर अपनी प्यास नहीं बुझा सकता।**
6. **"कलामो! "किसी बात को केवल इसलिए मत मानो कि वह तुम्हारे सुनने में आई है, किसी बात को केवल इसलिए मत मानो कि वह परंपरा से प्राप्त हुई है, किसी बात को केवल इसलिए मत मानो कि बहुत से लोग उसके समर्थक हैं, किसी बात को केवल इसलिए मत मानो कि वह (धर्म) ग्रंथों में लिखी है, किसी बात को केवल इसलिए मत मानो, कि वह तर्क (शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिए मत मानो, कि वह सही दिखाई देती हैं, किसी बात को केवल इसलिए मत मानो कि वे स्वीकृत विश्वास और विचार हैं, किसी बात को केवल इसलिए मत मानो कि ऊपरी तौर पर वह मान्य प्रतीत होती है; किसी बात को केवल इसलिए मत मानो कि वह किसी आदरणीय आचार्य की कही हुई है।"**
7. **"केवल जब तुम स्वयं के अनुभव से ही यह जानो कि 'ये बातें अहितकर हैं, ये बातें निंदनीय हैं, ये बातें विद्वान पुरुषों द्वारा निशिद्ध हैं, ये बातें करने से कष्ट होता है, दुख होता है, तब हे कालामो! तुम्हें उनका त्याग कर देना चाहिए।"**

अध्याय–10

सद्धम्म क्या है ?

1. संसार को 'धम्म–राज्य' बनाना

1. धर्म (Religion) का उद्देश्य क्या है ? इस प्रश्न का बुद्ध ने सर्वथा भिन्न उत्तर दिया है।

2. **तथागत का धम्म पंचशील, आष्टांगिक–मार्ग और पारमिताओं पर जोर देता है।**

3. बुद्ध ने इन्हें अपने धम्म का आधार क्यों बनाया ? क्योंकि यही केवल एक ऐसा जीवन–मार्ग है, जो मनुष्य को सदाचारी बना सकता है।

4. **मनुष्य द्वारा मनुष्य के प्रति अनुचित व्यवहार का परिणाम ही दुख है।**

5. केवल सदाचार ही इस अनौचित्य और उसके परिणामस्वरूप होने वाले दुख को दूर कर सकता है।

6. धम्म द्वारा मनुष्य को यह शिक्षा दी जानी आवश्यक है कि अच्छे कर्म क्या हैं, और जो अच्छे कर्म हैं उसका वह पालन करे।

7. धम्म द्वारा मनुष्य को यह शिक्षा दी जानी आवश्यक है कि बुरे कर्म क्या हैं, और जो बुरे कर्म हैं उससे वह दूर रहे।

8. धम्म के इन दो उद्देश्यों के अतिरिक्त, बुद्ध ने धम्म के दो अन्य उद्देश्यों पर भी जोर दिया, जिन्हें वे बहुत महत्त्वपूर्ण समझते थे।

9. **पहला है, मनुष्य के स्वभाव और उसकी प्रवृत्तियों का प्रशिक्षण,** जो प्रार्थना करने अथवा व्रत रखने अथवा यज्ञ–बलि करने से बिलकुल भिन्न है।

10. **यही कारण है कि बुद्ध ने चित्त की साधना को प्रथम स्थान दिया है जो कि चित्तवृत्ति को सुधारने के प्रशिक्षण का ही दूसरा नाम है।**

11. **दूसरी बात जिसे उन्होंने विशेष महत्त्व दिया, वह यह है कि मनुष्य में अकेला होने की स्थिति में भी उचित मार्ग पर डटे रहने का साहस हो।**

2. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह सभी के लिए ज्ञान का द्वार खोल दे

1. **ब्राह्मणी सिद्धांत था कि ज्ञान प्राप्ति का द्वार सभी के लिए नहीं खोला जा सकता।** यह अनिवार्य तौर पर कुछ लोगों तक ही सीमित रहना चाहिए।

2. उन्होंने केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के लिए ज्ञान–प्राप्ति की अनुमति प्रदान की। लेकिन इन तीन वर्णों के केवल पुरुष वर्ग के लिए ही यह अनुमति थी।

3. **समस्त स्त्रियां, चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ग की ही क्यों न हों और समस्त शूद्र पुरुष तथा स्त्रियां दोनों के लिए ज्ञान प्राप्ति वर्जित थी। वे साक्षर तक नहीं हो सकते थे।**

4. बुद्ध ने ब्राह्मणों के इस निर्दयतापूर्ण सिद्धांत के विरुद्ध विद्रोह किया।

5. उनका उपदेश था कि ज्ञान–प्राप्ति का द्वार सभी के लिए खुला रहना चाहिए–पुरुषों के लिए भी और स्त्रियों के लिए भी।

3. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह सिखाता है कि जो चीज आवश्यक है वह 'प्रज्ञा' है

4. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि केवल 'प्रज्ञा' पर्याप्त नहीं है : इसके साथ शील का होना भी अनिवार्य है

1. प्रज्ञा आवश्यक है। लेकिन शील और भी अधिक आवश्यक है। शील के बिना प्रज्ञा खतरनाक है।

2. प्रज्ञा विचार धम्म अथवा सम्यक विचार है। शील आचार धम्म है, जो सम्यक आचरण है।

3. बुद्ध ने शील के पांच मूलाधार निश्चित किए हैं।

4. एक का सम्बंध जीव–हिंसा से है।

5. दूसरे का सम्बंध चोरी से है।

6. तीसरे का सम्बंध काम–भोग सम्बंधी मिथ्याचार से है।

7. चौथे का सम्बंध झूठ बोलने से है।

8. पांचवें का सम्बंध नशीले पदार्थों का सेवन करने से है।

9. बुद्ध द्वारा 'शील' को 'विद्या' की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिए जाने का कारण स्पष्ट है।

10. **ज्ञान का उपयोग मनुष्य के शील पर निर्भर करता है। शील से अलग ज्ञान का कोई मूल्य नहीं। यही तथागत के कथन का सार है।**

5. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि प्रज्ञा और शील के साथ–साथ करुणा का होना भी अनिवार्य है

1. बौद्ध धम्म की आधार–शिला क्या है, इस पर विभिन्न मत हैं।

2. क्या केवल प्रज्ञा ही बुद्ध धम्म की आधार–शिला है ? क्या केवल करुणा ही बुद्ध धम्म की आधार–शिला है ?।

3. इसमें कोई मतभेद नहीं है कि बौद्ध धम्म के दो स्तंभों में से एक 'प्रज्ञा' है।

4. इसमें कोई संदेह नहीं है कि करुणा भी बुद्ध के धम्म का स्तंभ है।

5. **" तथागत का उद्देश्य ही है दरिद्रों, असहायों और अरक्षितों का मित्र बनना। जो रोगी हों उनकी सेवा करना, चाहे वे भिक्खु हों अथवा किसी अन्य धर्म के हों, दूसरे कोई भी हों– उनकी सेवा करना। दरिद्रों, अनाथों और बूढ़ों की सहायता करना तथा दूसरों को ऐसा करने की प्रेरणा देना।"**

6. धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह यह शिक्षा दे कि करुणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है

1. बुद्ध केवल 'करुणा' का उपदेश देकर ही नहीं बैठ गए।

2. **'करुणा का अर्थ मानव मात्र से प्रेम करना है।** बुद्ध ने इससे भी आगे 'मैत्री' की शिक्षा दी। **'मैत्री का अर्थ है सभी प्राणियों से प्रेम करना।**

3. मैत्री के बारे में बतलाते हुए बुद्ध ने भिक्खुओं से कहा–

4. "भिक्खुओं! मैत्री की धारा प्रवाहित और सदा प्रवाहित ही रहनी चाहिए। तुम्हारा यह उचित कर्तव्य रहे कि तुम्हारा मन पृथ्वी की तरह दृढ़ हो, वायु की तरह स्वच्छ हो और नदी की तरह गंभीर हो। यदि तुम ऐसा करोगे

तो तुम्हारी मैत्री आसानी से बाधित नहीं होगी चाहे कोई तुम्हारे साथ अप्रिय व्यवहार ही क्यों न करे।

5. **"तुम्हारी मैत्री की परिधि विश्व की तरह असीम होनी चाहिए और तुम्हारी भावना विशाल हो जिसे मापा भी न जा सके। और जिसमें कहीं द्वेष का विचार भी पैदा न होने पाए।**

6. "मेरे धम्म के अनुसार 'करुणा' का अभ्यास ही पर्याप्त नहीं है। मैत्री का अभ्यास किया जाना भी आवश्यक है।"

7. इसके आगे तथागत ने कहा, "मैं उस भिक्खु को मैत्री–भाव–संपन्न नहीं कहता, जो केवल भोजन–वस्त्र प्राप्त करने के लिए मैत्री प्रदर्शित करता है। मैं उसे ही सच्चा भिक्खु मानता हूं जिस की मैत्री का मूल स्रोत उसका धम्म–सिद्धांत है।

8. "भिक्खुओ! कोई भी पुण्य–कर्म मैत्री–भावना के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है। **मैत्री तो चित्त की विमुक्ति (Freedom of Mind)है**, यह उन सबको अपने में समेट लेती है, यह प्रकाशमान होती है, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्वलित होती है।"

7. धम्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब वह मनुष्य और मनुष्य के बीच की दीवार को गिरा दे

1. एक 'आदर्श समाज' क्या है? ब्राह्मणों के अनुसार वेदों ने आदर्श समाज की परिभाषा की है और वेद गलती की संभावना से परे हैं। अतः उनके द्वारा परिभाषित समाज ही आदर्श समाज है जिसे मनुष्य स्वीकार कर सकता है।

2. वेदों द्वारा निर्धारित आदर्श समाज को चातुर्वर्ण्य के नाम से जाना जाता है।

3. इसमें चार वर्ण होने चाहिएं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र।

4. इन वर्णों का आपसी सम्बंध क्रमिक असमानता के सिद्धांत पर आश्रित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में ये सभी वर्ण एक दूसरे के समान नहीं होने चाहिएं, बल्कि प्रतिष्ठा, अधिकार और सुविधाओं की दृष्टि से उन्हें एक दूसरे के ऊपर–नीचे होना चाहिए।

5. चातुर्वर्ण्य की तीसरी विशेषता यह है कि प्रत्येक वर्ण अपने लिए निश्चित पेशे में लगा रहे। ब्राह्मण का पेशा है पढ़ना–पढ़ाना और धार्मिक संस्कार करना। क्षत्रिय का पेशा है शस्त्र धारण करना और लड़ना। वैश्य का पेशा है व्यापार तथा दूसरे कारोबार करना। शूद्र का पेशा है ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना और सभी नीच काम करना।

6. कोई एक वर्ग दूसरे वर्गों के पेशों में अतिक्रमण नहीं कर सकता। वह उनके पेशे की सीमा में पैर नहीं रख सकता।

7. इस 'आदर्श–समाज' के सिद्धांत को ब्राह्मणों ने उचित ठहराया और लोगों में इसका प्रचार किया।

8. यह स्पष्ट है कि इस चातुर्वर्ण्य के सिद्धांत का 'प्राण' ही असमानता है। यह सामाजिक असमानता किसी ऐतिहिसिक विकास का परिणाम नहीं है। असमानता ब्राह्मणवाद द्वारा शास्त्रों में गढ़ा गया सिद्धांत है।

9. बुद्ध ने इसका जड़–मूल से विरोध किया।

10. **बुद्ध जातिवाद के बहुत कट्टर विरोधी थे और समानता के सबसे बड़े समर्थक थे।**

11. **बुद्ध ने कहा, "अस्सलायन! क्या ब्राह्मणों की ब्राह्मण–पत्नियां ऋतुमती नहीं होती, गर्भ धारण नहीं करतीं और संतान का प्रसव नहीं करती ? यह होते हुए भी क्या ब्राह्मणों का वही मत है जो तुमने कहा है–" ब्राह्मणों का मत है कि ब्राह्मण ही ऊंचे वर्ग के हैं, शेष उनसे नीचे हैं; ब्राह्मण ही गोरे रंग के हैं बाकि सब काले रंग के हैः पवित्रता का वास केवल ब्राह्मणों में हैं, अब्राह्मणों में नहीं; केवल ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, उसके मुख से उत्पन्न, उसके रचे हुए, उसके पैदा किए हुए तथा उसके उत्तराधिकारी हैं।" यद्यपि ब्राह्मण भी वैसे ही स्त्रियों से उत्पन्न होते हैं, जैसे अन्य लोग होते हैं ?"**

12. "न वंश–परंपरा से, न अच्छी शक्ल होने अथवा धनी होने से कोई मनुष्य अच्छा या बुरा होता है।

13. "जाति नहीं, असमानता नहीं, ऊंच नहीं, नीच नहीं; सभी बराबर हैं।" यही तथागत की देसना थी।

14. "दूसरे के साथ अपने आप को एक कर दो। यही सोचो जैसे वे हैं, वैसा मैं हूं, जैसा मैं हूं, वेसे ही वे हैं," बुद्ध ने कहा।

8. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा दे कि किसी मनुष्य का 'जन्म' से नहीं, बल्कि उसके गुणों से ही मूल्यांकन किया जाना चाहिए

1. ब्राह्मण जिस चातुर्वर्ण्य का उपदेश देते थे, उसका आधार जन्म था।
2. ब्राह्मणों के अनुसार मनुष्य की हैसियत उसके अपने जन्म पर आधारित है और अन्य किसी चीज पर नहीं।
3. जन्म पर आधारित ऊंच–नीच का यह सिद्धांत तथागत को उतना ही घृणित था जितना चातुर्वर्ण्य का सिद्धांत।
4. बुद्ध का सिद्धांत ब्राह्मणों के सिद्धांत के सर्वथा अलग था। उनका सिद्धांत था कि किसी मनुष्य के महत्त्व का मूल्यांकन 'जन्म' से नहीं बल्कि उसके गुणों से ही किया जाना चाहिए।

9. धम्म तभी सद्धम्म है जब वह मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता को बढ़ावा देता है

1. मनुष्य असमान ही जन्म लेते हैं।
2. कुछ हष्ट–पुष्ट होते हैं, कुछ कमजोर होते हैं।
3. कुछ अधिक बुद्धिमान होते हैं, कुछ कम बुद्धिमान अथवा कुछ बिलकुल बुद्धिमान नहीं होते हैं।
4. कुछ अधिक सामर्थ्यवान होते हैं, कुछ कम सामर्थ्यवान होते हैं।
5. कुछ धनी होते हैं, कुछ गरीब होते हैं।
6. सभी को अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ता है।
7. इस अस्तित्व के लिए संघर्ष में यदि असमानता को स्वाभाविक स्थिति स्वीकार कर लिया जाए तो सबसे कमजोर का तो कहीं ठिकाना ही नहीं रहेगा।
8. क्या यह 'असमानता' का नियम जीवन का नियम बन जाना चाहिए ?
9. कुछ लोग इस आधार पर 'हां' में उत्तर देते हैं कि जो 'जीवन–संघर्ष' में टिकने के लिए अधिक योग्य होगा, वही टिका रहेगा।

10. प्रश्न यह है कि जो मनुष्य 'जीवन–संघर्ष' में टिके रहने के लिए योग्यतम है, क्या वही मनुष्य श्रेष्ठतम है ?

11. कोई भी इसका स्पष्ट उत्तर नहीं दे सकता।

12. इसी संदेह के कारण धम्म "समानता" का उपदेश देता है। क्योंकि "समानता" "श्रेष्ठतम" व्यक्ति के जीवित रहने में सहायक हो सकती है चाहे वह व्यक्ति योग्यतम न हो।

13. समाज को "श्रेष्ठतम" मनुष्य चाहिए, "योग्यतम" नहीं।

14. इसलिए यही प्राथमिक कारण है, जिसके कारण धम्म 'समानता' का समर्थक है।

15. बुद्ध का यही दृष्टिकोण था और इसीलिए उनका यह तर्क था कि जो ध म्म 'समानता' का समर्थक नहीं है, वह अपनाने योग्य नहीं है।

16. **क्या वह धम्म अधिक श्रेष्ठतर नहीं है जो अपने सुख के साथ–साथ दूसरों के सुख में वृद्धि करता है और किसी प्रकार के अत्याचार को सहन नहीं करता।**

17. बुद्ध का धम्म एक न्याय–संगत धम्म है, जो मनुष्य की अपनी अच्छी मनोवृति में से उत्पन्न होता है।

अध्याय–11
धर्म और धम्म
1. धर्म क्या है ?

1. धर्म (Religion) एक अस्पष्ट शब्द है, जिसका कोई निश्चित अर्थ नहीं है।
2. यह एक ऐसा शब्द है, जिसके अनेक अर्थ हैं।
3. इसका कारण है कि 'धर्म' बहुत सी अवस्थाओं में से होकर गुजरा है। हर अवस्था में यह धारणा 'धर्म' कहलाती है यद्यपि एक अवस्था में इस धारणा का वही अर्थ नहीं था जो बीती अवस्था में था अथवा आने वाली अवस्था (समय) में होने वाला है।
4. 'धर्म' की संकल्पना कभी निश्चित नहीं रही है।
5. यह समय–समय पर बदलती चली आई है।
6. एक समय था जब बिजली, वर्षा और बाढ़ जैसी घटनाएं आदि–मानव की समझ से परे की बात थी। ऐसी किसी भी घटना पर काबू पाने के लिए जो भी कुछ टोना–टोटका किया जाता था, 'जादू' कहलाता था। इसलिए 'धर्म' को 'जादू' समझा जाने लगा।
7. तब 'धर्म' के विकास में दूसरा चरण आया। इस चरण में 'धर्म' का अर्थ आदमी के विश्वासों, धार्मिक कर्म–काण्डों, धर्मानुष्ठानों, प्रार्थनाओं और यज्ञ–बलियों के अर्थ में समझा जाने लगा।
8. लेकिन 'धर्म' की यह धारणा नकली है।
9. 'धर्म' का केंद्र–बिंदु इस विश्वास से आरंभ होता है कि कोई शक्ति विशेष अस्तित्व में है, जिसके कारण ये सभी घटनाएं घटती हैं और जिसे आदि–मानव नहीं जानता था और न ही उसे समझ पाया था। इस अवस्था में पहुंचने पर 'जादू' अपना अस्तित्व खो बैठा।
10. ये विश्वास, कर्म–कांड, धर्मानुष्ठान और यज्ञ–बलियां, हितैषी शक्ति को संतुष्ट करने के लिए और क्रुद्ध शक्ति को शांत करने के लिए–दोनों प्रकार से आवश्यक थीं।
11. आगे चलकर वही शक्ति 'ईश्वर', 'परमात्मा' या 'सृष्टा' कहलाई।
12. तब 'धर्म' का तीसरा चरण आया, जब यह माना जाने लगा कि ईश्वर ने इस संसार की और आदमी की भी उत्पत्ति की है।

13. इस के बाद धर्म का यह विश्वास पैदा हुआ कि हर मनुष्य की देह में एक 'आत्मा' है, वह 'आत्मा' नित्य है और वही इस संसार में मनुष्य के कर्मों के लिए 'ईश्वर' के प्रति उत्तरदायी है।

14. अब धर्म का यही अर्थ हो गया है और अब धर्म से यही भावार्थ ग्रहण किया जाता है—ईश्वर में विश्वास, आत्मा में विश्वास, ईश्वर की पूजा, गलती की दोषी आत्मा का सुधार, धर्मानुष्ठान, बलि आदि करके ईश्वर को प्रसन्न रखना।

2. धम्म से धर्म कैसे भिन्न है ?

1. बुद्ध जिसे 'धम्म' कहते हैं वह मूल रूप में धर्म से सर्वथा भिन्न है।
2. लेकिन दोनों में कोई अधिक सदृश्यता नहीं है। बल्कि दोनों में बहुत बड़ा अंतर है।
3. कहा जाता है कि **'धर्म' या 'रिलीजन' व्यक्तिगत चीज है** और मनुष्य को इसे अपने तक ही सीमित रखना चाहिए। **इसे सार्वजनिक जीवन में अपनी भूमिका नहीं निभाने देनी चाहिए।**
4. इसके विपरीत **'धम्म' एक सामाजिक वस्तु है।** यह मूल रूप से और आवश्यक रूप से सामाजिक है।
5. **'धम्म' का अर्थ ही सदाचरण है जिसका अर्थ है जीवन के सभी क्षेत्रों में एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ अच्छा सम्बंध।**
6. दूसरे शब्दों में 'धम्म' के बिना समाज का काम नहीं चल सकता।
7. अब जानते है कि 'धम्म' क्या है ? और 'धम्म' की आवश्यकता क्यों है ? तथागत बुद्ध के अनुसार 'धम्म' के दो आधार तत्व हैं– प्रज्ञा तथा करुणा।
8. प्रज्ञा क्या है ? प्रज्ञा किस लिए ? प्रज्ञा का अर्थ है (निर्मल) बुद्धि। तथागत बुद्ध ने प्रज्ञा को अपने धम्म के दो स्तंभों में से एक माना है, क्योंकि वे अंधविश्वास के लिए कहीं कोई स्थान नहीं छोड़ना चाहते थे।
9. करुणा क्या है ? और करुणा किसलिए ? करुणा का अर्थ है (दया) प्रेम, क्योंकि इसके बिना न तो समाज जीवित रह सकता है और न ही उन्नति कर सकता है। यही कारण है कि तथागत बुद्ध ने करुणा को अपने धम्म का दूसरा स्तंभ बताया।
10. बुद्ध के 'धम्म' की यही परिभाषा है।

11. 'धर्म' से 'धम्म' की परिभाषा कितनी भिन्न है ?

12. बुद्ध द्वारा दी गई धम्म की यह परिभाषा कितनी प्राचीन और फिर भी कितनी आधुनिक है।

13. 'प्रज्ञा' और 'करुणा' का एक अनूठा सम्मिश्रण ही तथागत का 'धम्म' है।

3. नैतिकता और धर्म

1. 'धर्म' में नैतिकता का क्या स्थान है ?

2. **सच्चाई तो यह है कि नैतिकता का 'धर्म' में कोई स्थान ही नहीं है।**

3. 'धर्म' के अंतर्गत आते हैं 'ईश्वर', 'आत्मा', 'प्रार्थनाएं', 'पूजा', 'कर्म–कांड', 'धर्मानुष्ठान' और 'बलि–कर्म'।

4. नैतिकता वहीं होती है जहां एक मनुष्य का सम्बंध दूसरे मनुष्य के साथ होता है।

5. नैतिकता तो 'धर्म' में बाहर से आने वाली हवा की तरह है, ताकि शांति और व्यवस्था स्थापित की जा सके।

6. **प्रत्येक 'धर्म' नैतिकता का उपदेश देता है, किंतु नैतिकता 'धर्म' का मूलाधार नहीं है।**

7. यह साथ जोड़ दिए गए एक रेल के डिब्बे की तरह है। यह अवसर के अनुसार साथ जोड़ दिया जाता है और अलग भी कर दिया जाता है।

8. 'धर्म' के कार्य में नैतिकता का स्थान आकस्मिक और अवसर के अनुसार है।

9. इसीलिए 'धर्म' में नैतिकता प्रभावकारी नहीं है।

4. धम्म और नैतिकता

1. धम्म में नैतिकता का क्या स्थान है ?

2. **सीधा सरल उत्तर है कि नैतिकता ही धम्म है और धम्म ही नैतिकता है।**

3. **दूसरे शब्दों में यद्यपि धम्म में 'ईश्वर' के लिए कोई स्थान नहीं है, तो भी 'नैतिकता' धम्म में 'ईश्वर' का स्थान ले लती है।**

4. धम्म में प्रार्थनाओं के लिए, तीर्थ–यात्राओं के लिए, कर्मकांडों के लिए, ध र्मानुष्ठानों के लिए अथवा बलि–कर्मों के लिए कोई स्थान नहीं है।

5. नैतिकता ही धम्म का सार है। इसके बिना धम्म है ही नहीं।

6. मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य के प्रति मैत्री की आवश्यकता के कारण ही धम्म में नैतिकता उत्पन्न होती है

5. केवल नैतिकता ही पर्याप्त नहीं है। यह पवित्र और विश्वव्यापी होनी चाहिए

1. कोई भी चीज कब पवित्र बनती है ? कोई चीज क्यों पवित्र बनती है ?

2. जब कोई चीज या विश्वास 'निर्मलता' की अवस्था में प्रवेश कर गया तो इसका अर्थ है कि इसके विरुद्ध आचरण नहीं किया जा सकता। वास्तव में उसे स्पर्श ही नहीं किया जा सकता। ऐसा करना सर्वथा निषिद्ध हो जाता है।

3. पवित्रता पावन है। इसका उल्लंघन करना धम्म–विरुद्ध है।

4. किसी भी चीज को 'पवित्र' क्यों बनाया जाता है? अपने प्रश्न को विषय के भीतर रखने के लिए, पूछा जा सकता है कि नैतिकता को 'पवित्र' क्यों बनाया गया ?

5. नैतिकता को पवित्र बनाने में तीन कारणों ने भूमिका निभाई है।

6. पहला कारण श्रेष्ठ है, उसकी सुरक्षा की सामाजिक आवश्यकता का होना।

7. समान माप–दंड और स्तर के अभाव में समाज परस्पर मिल–जुलकर रहने वाला समाज नहीं हो सकता।

8. इस प्रकार अलग–अलग मापदंड और स्तर के रहते व्यक्ति के लिए मन का सामंजस्य बनाए रखना असंभव है।

9. अपने विवकेयुक्त अथवा संतुलित दावों का ध्यान किए बिना यदि समाज में किसी एक दल की दूसरे दल पर श्रेष्ठता बनी रहती है, तो इसका अवश्यंभावी परिणाम परस्पर कलह होगा।

10. कलह को रोकने का एक मात्र उपाय यह है कि सभी के लिए नैतिकता के समान नियम हों जो सभी के लिए पवित्र हों।

11. इसीलिए बुद्ध ने उपदेश दिया कि धम्म ही नैतिकता है, और जिस प्रकार धम्म पवित्र है उसी प्रकार नैतिकता भी पवित्र है।

अध्याय–12

किस प्रकार शाब्दिक समानता मूलभूत अर्थ–भेद को छिपाए रखती है

1. पुनर्जन्म किस (चीज) का ?

1. क्या बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास करते थे ?
2. उत्तर "हां" में है।
3. अच्छा यह होगा कि इस प्रश्न को दो हिस्सों में बांट लिया जाए–(1) किस चीज का जन्म ? और (2) किस व्यक्ति का जन्म ?
4. पहले हम इस प्रश्न को लें कि पुनर्जन्म किस चीज का ?
5. बुद्ध के अनुसार अस्तित्व के चार भौतिक पदार्थ हैं, चार महाभूत हैं, जिनसे शरीर बनता हैं वे हैं–(1) पृथ्वी, (2) जल, (3) अग्नि, (4) वायु।
6. प्रश्न है : जब शरीर का मरण होता है तो इन चारों महाभूतों का क्या होता है? क्या ये भी शरीर के साथ मर जाते हैं? कुछ लोगों का कहना है कि वे भी मर जाते हैं।
7. बुद्ध ने कहा कि नहीं। वे आकाश में सामूहिक रूप से विद्यमान (तैरते हुए) समान भौतिक पदार्थों में मिल जाते हैं।
8. इस विद्यमान (तैरती हुई) राशि में से जब इन चारों महाभूतों का पुनर्मिलन होता है, तो एक नया जन्म होता है।
9. बुद्ध का पुनर्जन्म से यही अभिप्राय था।
10. इन भौतिक पदार्थों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे उसी शरीर के हों जिसका मरण हो चुका है। वे नाना मृत–शरीरों के भौतिक अंश हो सकते हैं।
11. यही बात ध्यान देने योग्य है कि शरीर का मरण हो जाता है, लेकिन भौतिक पदार्थ बने रहते हैं।
12. बुद्ध इसी प्रकार के पुनर्जन्म को मानते थे।

2. पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का ?

1. सबसे कठिन प्रश्न है पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का ?
2. क्या वही मरा हुआ मनुष्य एक नया जन्म ग्रहण करता है ?
3. क्या बुद्ध इस सिद्धांत को मानते थे ?

   उत्तर है, "इसकी बहुत कम संभावना है।"
4. यदि मृत मनुष्य की देह के सभी भौतिक–अंश पुनः सिरे से मिलकर एक नए शरीर का निर्माण कर सकें, तभी उस मनुष्य के पुनर्जन्म की संभावना हो सकती है।
5. **यदि भिन्न–भिन्न मृत शरीरों के अंशों के मेल से एक नया शरीर बनता है, तो यह पुनर्जन्म है लेकिन यह उसी मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं हुआ।**

3. क्या बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धांत ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धांत के समान ही है ?

1. बुद्ध के धम्म का कोई भी दूसरा ऐसा सिद्धांत नहीं है, जिसने इतनी भ्रांति पैदा की हो, जितनी इस 'कर्म' के सिद्धांत ने।
2. बुद्ध के धम्म में इस 'कर्म' का क्या स्थान है और इसका वास्तविक महत्त्व क्या है, यह पहले ही बताया जा चुका है।
3. **अनभिज्ञ हिंदू** नासमझी के कारण केवल शब्दों की समानता की तुलना करके **कहते हैं कि बौद्ध धम्म वही जो ब्राह्मणवाद अथवा हिंदू ध र्म है।**
4. **ब्राह्मणों का शिक्षित और रुढ़िवादी वर्ग भी यही कहता है। वे अनभिज्ञ जनता को जान–बूझकर पथभ्रष्ट करते हैं।**
5. शिक्षित ब्राह्मण भली प्रकार जानते हैं कि बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धांत ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धांत से सर्वथा भिन्न है। फिर भी वे यही कहे जाते हैं कि बौद्ध धम्म वही है जो ब्राह्मणवाद या हिंदू धर्म है।
6. बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धांत शाब्दिक समानता में कितना अधिक क्यों न हो किंतु अपने अर्थ में वह ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धांत के समान नहीं हो सकता।

7. दोनों की मूल स्थापनाएं परस्पर इतनी अधिक भिन्न हैं कि परिणाम एक हो ही नहीं सकता।

8. सुविधा के लिए ब्राह्मणी 'कर्म' सिद्धांत के मूलतत्त्वों को क्रमशः इस प्रकार गिना जा सकता है—

9. ब्राह्मणी 'कर्म' सिद्धांत 'आत्मा' की मान्यता पर निर्भर करता है। किंतु बौद्ध सिद्धांत 'आत्मा' की मान्यता पर निर्भर नहीं करता। यथार्थ में बौद्ध धम्म में 'आत्मा' है ही नहीं।

10. ब्राह्मणी 'कर्म' का सिद्धांत वंशानुगत है।

11. यह जन्म—जन्मांतर चलता रहता है। यह मानता है कि 'आत्मा' एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में चली जाती है।

12. बौद्ध धम्म के कर्म सिद्धांत के बारे में यह बात सत्य नहीं है। यह इसलिए भी है, क्योंकि बौद्ध धम्म में 'आत्मा' नहीं है।

13. ब्राह्मणी कर्म सिद्धांत आत्मा के अस्तित्व पर आधारित है, जो शरीर से पृथक मानी जाती है। जब शरीर मरता है तो 'आत्मा' उसके साथ नहीं मरती है। 'आत्मा' फुर्र से उड़ जाती है।

14. बौद्ध धम्म के कर्म—सिद्धांत के बारे में यह बात सत्य नहीं है।

15. ब्राह्मणी कर्म—सिद्धांत के अनुसार जब मनुष्य कोई कर्म करता है तो उसके 'कर्म' के दो परिणाम होते हैं। एक तो 'कर्म' करने वाला प्रभावित होता है, दूसरे उस 'कर्म' का उसकी 'आत्मा' पर प्रभाव पड़ता है।

16. वह जो भी 'कर्म' करता है उसका 'आत्मा' पर प्रभाव पड़ता है।

17. जब मनुष्य मरता है और 'आत्मा' उसका शरीर छोड़ कर निकल भागती है तो 'आत्मा'के विषय में एक धारणा होती है।

18. ये संस्कार ही हैं जो उसके भावी जन्म और स्थिति को निर्धारित करते हैं।

19. ब्राह्मणी 'आत्मवाद' और बौद्ध 'अनात्मवाद' में कुछ भी मेल नहीं है।

20. इन कारणों से बौद्ध धम्म का कर्म—सिद्धांत और ब्राह्मणी धर्म का कर्म—सिद्धांत न एक—सा है और न ही एक—सा हो सकता है।

21. **इसलिए बौद्ध धम्म के कर्म—सिद्धांत और ब्राह्मणी कर्म—सिद्धांत को एक ही बताना एकदम मूर्खता है।**

4. क्या बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व–कर्म का भविष्य के जन्म पर प्रभाव पड़ता है ?

1. **बुद्ध के 'कर्म' सिद्धांत का सम्बंध मात्र 'कर्म' से था और वह भी वर्तमान जन्म के कर्म से।**
2. किंतु 'कर्म' का एक विस्तारित सिद्धांत (ब्राह्मणी सिद्धांत) भी है। इसके अनुसार 'कर्म' में पूर्व जन्म अथवा पूर्व जन्मों में किए गए कर्म भी शामिल हैं।
3. यदि मनुष्य का जन्म गरीब परिवार में हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के बुरे कर्म का परिणाम है। यदि एक मनुष्य धनी घर में पैदा हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के अच्छे कर्मों का परिणाम है।
4. यदि किसी मनुष्य में कोई जन्म–जात दोष है तो उसका कारण उसके पूर्वजन्म का बुरा कर्म है।
5. **यह एक बड़ा ही खतरनाक सिद्धांत है,** क्योंकि इस प्रकार की 'कर्म' की व्याख्या में मानव–प्रयास के लिए कोई स्थान नहीं है। पूर्वजन्म के कर्म के द्वारा ही उसके लिए सभी कुछ पूर्व–निश्चित है।
6. **यह विस्तारित सिद्धांत भी आमतौर पर बुद्ध के सिर मढ़ दिया जाता है।**
7. क्या बुद्ध ऐसे सिद्धांत को मानते थे ?
8. पहला प्रश्न यह है : पूर्वजन्म का कर्म वंशानुगत–क्रम से कैसे प्राप्त होता है ? उसकी क्या विधि है ?
9. दूसरा प्रश्न है : वंशानुगत–क्रम के हिसाब से पूर्व–जन्म के उस कर्म की अपनी स्थिति क्या है? क्या यह वंशानुगत क्रम से प्राप्त कोई 'लक्षण' है अथवा स्वयं अर्जित किया गया कोई 'लक्षण' ?
10. वंशानुगत क्रम से हमें अपने माता–पिता से क्या प्राप्त होता है ?
11. विज्ञान के अनुसार सोचें तो नए प्राणी का आरंभ उस समय से होता है जब वीर्य और रज का संयोग होता है। प्राणी की उत्पत्ति तभी होती है जब वीर्य–कण रज–कण में प्रवेश करता है।

12. हर मानव का आरंभ तभी होता है जब दो जीवित कण मिलकर एक होते हैं।

13. इस विषय की चर्चा करने के लिए बुद्ध के पास जो यक्ष आया था, उससे बुद्ध ने कहा था कि मनुष्य का जन्म उत्पत्तिमूलक (Genetic) है।

14. तथागत ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया–

    सर्वप्रथम कलल पैदा होता है,

    तब अर्बुद होता है,

    तब पेशी होती है,

    तब घन होता है,

    और घन में ही बल और नाखून आदि उत्पन्न होते हैं और मां जो कुछ भी खाना–पीना खाती है, उससे बालक मां के गर्भ में बढ़ता है।

15. हिंदू सिद्धांत इससे सर्वथा भिन्न है।

16. इसका कहना है कि शरीर तो उत्पत्तिमूलक है अथवा माता–पिता से प्राप्त है। किंतु 'आत्मा' नहीं। यह शरीर में बाहर से प्रवेश करती है। कहां से?–यह बात इस सिद्धांत में स्पष्ट नहीं की गई है।

17. **विज्ञान के अनुसार बालक वंश–परंपरा से अपने माता–पिता के गुण प्राप्त करता है।**

18. **हिंदू कर्म सिद्धांत के अनुसार एक बालक, अपने माता–पिता से शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त करता।** हिंदू 'कर्म' सिद्धांत के अनुसार बालक का पूर्व–कर्म उसका अपना किया हुआ 'कर्म' है, और वह उसे अपने द्वारा, अपने लिए ही स्वयं प्राप्त करता है।

19. **माता–पिता उस बालक को कुछ नहीं देते। बालक ही सब कुछ साथ लेकर आता है।**

20. इस तरह का सिद्धांत बेतुकापन है।

21. जैसा कि पहले बताया गया है, बुद्ध इस प्रकार के बेतुकापन में विश्वास नहीं करते थे।

5. क्या बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व कर्मों का भविष्य के जीवन पर प्रभाव पड़ता है ?

1. इस प्रकार बुद्ध का पूर्व–कर्म का सिद्धांत विज्ञान से बेमेल नहीं है।
2. **बुद्ध पूर्व–जन्मों के कर्मों के वंशानुगत गुणों (Inheritance) में विश्वास नहीं रखते थे।**
3. जब वह यह मानते थे कि जन्म माता–पिता से प्रदत्त होता है और बालक में जो कुछ भी गुण–दोष होते हैं, वे वंशानुगत क्रम से माता–पिता के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं, तो वह कर्मों के संसरण में विश्वास ही कैसे कर सकते थे ?
4. **अब बुद्ध यह भी जोर देकर कहते हैं कि एक मनुष्य की स्थिति उसके वंशानुगत गुणों पर उतनी निर्भर नहीं करती, जितनी उसकी परिस्थिति पर निर्भर करती है।"**
5. **पूर्व–कर्म का सिद्धांत शुद्ध ब्राह्मणी सिद्धांत है।** पूर्व–कर्म का वर्तमान जीवन पर प्रभाव पड़ने का विचार ब्राह्मणी 'आत्मा' के सिद्धांत से पूर्णतया मेल खाता है, क्योंकि उसके अनुसार 'कर्म' का 'आत्मा' पर प्रभाव पड़ता है। लेकिन बुद्ध धम्म के 'अनात्मवाद' से इसका किसी भी तरह मेल नहीं खाता।
6. लगता है कि **इसे** (बाद के) **बौद्ध धम्म में उनके (ब्राह्मणों के) द्वारा जोड़ दिया गया है जो बौद्ध धम्म को हिंदू धर्म के जैसा ही बनाना चाहते थे** या जो यह नहीं जानते थे कि बौद्ध सिद्धांत क्या है।
7. यह कल्पना कर पाना असंभव है कि महाकारुणिक कहे जाने वाले बुद्ध ने कभी इस प्रकार के सिद्धांत का समर्थन किया होगा।

6. अहिंसा के विभिन्न अर्थ जिनमें इसकी व्याख्या की गई और इसे व्यवहार में लाया गया

1. अहिंसा अथवा हत्या न करना, बुद्ध की शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।
2. इसका करुणा तथा मैत्री से अत्यंत निकट का सम्बंध है।
3. फिर भी प्रश्न उठाया गया है कि क्या बुद्ध की अहिंसा बाध्यता में

निर्बाध थी या केवल प्रासंगिक थी। क्या यह केवल एक सिद्धांत मात्र थी अथवा एक नियम थी ?

4. जो लोग बुद्ध के उपदेशों को स्वीकार करते है वे अहिंसा को नैतिक बाध्यता में निर्बाध बंधन के रूप में स्वीकार करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। उनका कहना है कि अहिंसा की ऐसी परिभाषा (अर्थ) में बुराई के लिए अच्छाई का त्याग हो जाता है अथवा दुर्गुण के लिए सद्‌गुण का त्याग हो जाता है।

5. इस प्रश्न को स्पष्ट करने की जरूरत है। कोई अन्य ऐसा विषय नहीं है जिसमें इतना भ्रम पैदा होता हो जितना कि अहिंसा के विषय में।

7. अहिंसा का अर्थ

1. 'अहिंसा परमो धर्मः' एक चरम सिद्धांत है। यह एक जैन–सिद्धांत है बौद्ध सिद्धांत नहीं।

2. **यह एकदम स्पष्ट है कि बुद्ध का अभिप्राय 'जीव–हत्या करने की इच्छा' (Will to kill) और 'जीव–हत्या करने की आवश्यकता (Need to kill) में भेद करना था।**

3. **जहां 'जीव–हत्या करने की जरूरत थी, वहां उन्होंने जीव–हत्या करने का निषेध नहीं किया।**

4. जहां केवल "जीव–हत्या की इच्छा" के अतिरिक्त और कुछ नहीं था वहां उन्होंने जीव–हत्या का निषेध किया।

5. इस तरह समझ लेने पर "अहिंसा" के बौद्ध सिद्धांत में कहीं कुछ भ्रामक नहीं है।

6. यह पूर्णतः एक युक्तियुक्त अथवा नैतिक सिद्धांत है, जिसे सभी को स्वीकार कर लेना चाहिए।

7. एक नैतिक मनुष्य पर यह भरोसा किया जा सकता है कि वह सही विभाजक रेखा खींच सकेगा।

8. ब्राह्मणी धर्म में 'जीव–हिंसा करने की इच्छा' है।

9. जैन धर्म में 'जीव–हिंसा कभी भी न करने की इच्छा' है।

10. बुद्ध का सिद्धांत उनके मध्यम मार्ग के अनुरूप है।

11. इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा जाए तो बुद्ध ने शील (Principle) और नियम (Rule) में भेद किया है। उन्होंने अहिंसा को नियम नहीं बनाया। उन्होंने इसे एक सिद्धांत (Principle) अथवा जीवन का एक पथ माना है।

12. इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा करके बुद्ध ने अत्यंत प्रज्ञा–सम्मत बात की है।

13. एक शील (Principle) आपको कार्य करने के लिए स्वतंत्र छोड़ता है। एक नियम (Rule) स्वतंत्र नहीं छोड़ता। या तो आप नियम को तोड़ते हैं, या नियम आपको तोड़ता है।

8. भ्रम के कारण

1. बुद्ध के उपदेशों को जिन श्रोताओं ने सुना, उनमें अधिकांश भिक्खु थे।

2. किसी भी विषय में बुद्ध का क्या कहना था, उसे जनसाधारण तक पहुंचाने वाले भिक्खुगण ही थे।

3. प्रायः ऐसा पाया गया है कि बुद्ध ने जो कुछ कहा उसे गलत ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

4. **बुद्ध के जीवन–काल में ही कई बार उनके वचनों के गलत प्रस्तुतीकरण की जानकारी उनको दी गई।**

5. उदाहरण के तौर पर ऐसे पांच अवसरों का उल्लेख किया जा सकता है। एक का उल्लेख अलगद्दपम सुत्त में आया है, दूसरे का महाकम्मविभंग सुत्त में, तीसरे का कण्णकट्ठल सुत्त में चौथे का महातण्हा–सांख्य सुत्त में और पांचवें का जीवक सुत्त में।

6. शायद इस तरह के और भी अनेक अवसरों पर तथागत के वचनों का गलत प्रस्तुतीकरण किया गया हो, क्योंकि हम देखते हैं कि भिक्खु भी बुद्ध के पास गए और प्रश्न किया कि ऐसी परिस्थिति में उन्हें क्या करना चाहिए।

7. **'कर्म' और 'पुनर्जन्म' के बारे में बुद्ध वचनों के गलत प्रस्तुतीकरण के अवसर सामान्य बात है।**

8. इन सिद्धांतों को ब्राह्मणी 'धर्म' में भी स्थान प्राप्त है। परिणामस्वरूप भाणकों के लिए ब्राह्मणी मत को बौद्ध धम्म में सम्मिलित कर लेना आसान था।

9. **इसलिए त्रिपिटक में जिसे भी 'बुद्ध–वचन' के रूप में माना गया है, उसे स्वीकार करने में बहुत सावधानी की आवश्यकता है।**

10. लेकिन इसके लिए एक कसौटी उपलब्ध है।

11. यदि कोई ऐसी बात है जिसके बारे में विश्वास के साथ कहा जा सकता है तो वह यह है कि उनका कोई महत्त्व नहीं होता यदि उनका कथन बुद्धिसंगत, तर्कसंगत नहीं होता। **इसलिए जो कुछ भी बुद्धिसंगत और तर्कसंगत है, अन्य बातें समान होते हुए, उसे 'बुद्ध–वचन' के रूप में लिया जा सकता है।**

12. दूसरी बात यह है कि बुद्ध ने कभी ऐसी बेकार की चर्चा में नहीं पड़ना चाहा जो मनुष्य के कल्याण के लिए लाभकारी नहीं थी। इसलिए कोई भी ऐसी बात जिसका मनुष्य के कल्याण से कोई सम्बंध नहीं, यदि बुद्ध के सिर मढ़ी जाती है, तो उसे 'बुद्ध–वचन' स्वीकार नहीं किया जा सकता।

13. एक तीसरी कसौटी भी है। वह यह कि बुद्ध ने सभी विषयों को दो वर्गों में विभक्त रखा था। ऐसे विषय जिनके बारे में वे निश्चित थे, और ऐसे विषय जिनके बारे में वे निश्चित नहीं थे। जो विषय पहली श्रेणी में आते हैं उनके बारे में उन्होंने अपने विचार निश्चयात्मक रूप से और अंतिम रूप से व्यक्त किए हैं। जो विषय दूसरी श्रेणी में आते हैं उनके बारे में उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए हैं, लेकिन ऐसे विचार बदले भी जा सकते हैं।

14. वार्ता करते समय जिन तीन प्रश्नों के बारे में संदेह और मतभेद है उनके बारे में यह निर्णय करने से पहले कि बुद्ध का निश्चित मत क्या था, यह आवश्यक है कि हम इन कसौटियों को न भूलें।

अध्याय–13
बौद्ध जीवन–मार्ग
1. अच्छे कर्म, बुरे कर्म

1. **अच्छे कर्म करो। बुरे कर्मों में भागीदार न बनो। कोई बुरे कर्म न करो।**
2. **यही बौद्ध जीवन–मार्ग है।**
3. **यदि मनुष्य अच्छा कर्म करे तो उसे इसको बार–बार करना चाहिए।** उसी में चित्त लगाना चाहिए। अच्छे कर्मों का संचय सुखकर होता है।
4. यदि कोई मनुष्य दुष्ट मन से कुछ बोलता है या कोई काम करता है तो दुख उसके पीछे–पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी का पहिया खींचने वाले (पशु) के पीछे–पीछे।
5. बुरे कर्म न करो। प्रमाद न करो। मिथ्या–दृष्टि न रखो।
6. अच्छे कर्म का पालन करें, बुरे कर्म का पालन न करें। अच्छे कर्म करने वाला इस लोक में सुखपूर्वक रहता है।
7. **कामुकता से दुख पैदा होता है, कामुकता से भय पैदा होता है। जो कामुकता से एकदम मुक्त है, उसके लिए न दुख है और न भय है।**

2. तृष्णा और कामवासना

1. **तृष्णा अथवा कामवासना के वशीभूत न होना।**
2. **यही बौद्ध जीवन–मार्ग है।**
3. तृष्णा से शोक पैदा होता है, तृष्णा से भय पैदा होता है। जो तृष्णा से मुक्त है, उसके लिए न शोक है, न भय है।
4. कामवासना से दुख पैदा होता है, कामवासना से भय पैदा होता है, जो कामवासना से मुक्त है, उसे न दुख है और न भय है।
5. लोभ से दुख पैदा होता है, लोभ से भय पैदा होता है, जो लोभ से मुक्त है, उसे न दुख है और न भय है।
6. **जो शीलवान है, जो प्रज्ञावान है, जो न्यायप्रिय है, जो सत्यवादी है तथा जो अपने कर्तव्य को पूरा करता है–उससे सभी प्यार करते हैं।**

3. ठेस और द्वेष

1. **किसी को ठेस मत पहुंचाओ, किसी से द्वेष मत रखो।**
2. **यही बौद्ध जीवन–मार्ग है।**
3. आत्मविश्वास, शील, वीरता, समाधि, सत्य की खोज, विद्या (Perfection of knowledge), आचरण तथा स्मृति (जागरूकता) से इस महान दुख का अंत करो।
4. वाणी से बुरा वचन न बोलना, किसी को हानि न पहुंचाना, विनयपूर्वक (नियमानुसार) संयत रहना–यही बुद्ध की देसना है।
5. जो निर्दोष और अहानिकारक व्यक्तियों को कष्ट पहुंचाता है, वह स्वयं कष्ट भोगेगा।
6. यदि कोई मनुष्य किसी अहानिकर, शुद्ध और निर्दोष मनुष्य को कष्ट पहुंचाता है, तो उसका बुरा कर्म लौटकर उसी मूर्ख मनुष्य पर पड़ता है, ठीक वैसे ही जैसे हवा के विरुद्ध फेंकी हुई धूल फेंकने वाले पर ही आकर पड़ती है।

4. क्रोध और शत्रुता

1. **क्रोध मत करो। शत्रुता को भूल जाओ। अपने शत्रुओं को मैत्री से जीतो।**
2. **यही बौद्ध जीवन–मार्ग है।**
3. मनुष्य क्रोध को अक्रोध से जीते, बुराई को भलाई से जीते, लोभी को उदारता से जीते, और झूठे को सच्चाई से जीते।
4. सत्य बोले, क्रोध न करे, थोड़ा होने पर भी दे।
5. वैर से वैर कभी भी शांत नहीं होता, प्रेम से ही वैर शांत होता है। यही सनातन नियम है।

5. व्यक्ति, मन और मन के मैल

1. **मनुष्य वैसा ही होता है, जैसा उसका मन उसको बना देता है।**
2. **सन्मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए मन को साधना पहला कदम है।**
3. **बौद्ध जीवन–मार्ग में यह मुख्य शिक्षा है।**
4. जिसे नियंत्रण में रखना कठिन है, जो चंचल है, जो हमेशा आनंद ही खोजता

रहता है, ऐसे मन को नियंत्रण में रखना अच्छा है। नियंत्रित मन सुख लाता है।

5. लेकिन सब कलंकों से भी बढ़कर एक कलंक है अविद्या। अविद्या सबसे बढ़कर कलंक है। हे भिक्खुओं! इस कलंक का त्याग कर कलंक रहित बनो।

6. राग के समान आग नहीं और लोभ के समान बाढ़ नहीं।

7. जो मनुष्य दूसरों के दोष ही देखता रहता है और सदा हाय–हाय करता है, उसके चित्त–दोष बढ़ते जाते हैं।

8. सभी बुरे कर्मों से दूर रहो, अच्छे कर्म करो, अपने चित्त को शुद्ध रखो, यही बुद्ध की शिक्षा है।

6. स्वयं के बारे में और स्व–विजय

1. **यदि किसी में अपनापन है तो उसे स्व–विजयी होने का अभ्यास करना चाहिए।**

2. **यही बौद्ध जीवन–मार्ग है।**

3. मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है, दूसरा कौन उसका स्वामी हो सकता है ? अपने–आप को संयत रखने पर मनुष्य एक दुर्लभ स्वामित्व को पाता है जिसे बहुत कम लोग पा सकते हैं।

4. **सबसे पहले अपने–आप को ही ठीक मार्ग पर लगाएं, तभी दूसरों को उपदेश दें।** बुद्धिमान मनुष्य किसी को ऐसा अवसर न दे कि दूसरे उसे कुछ कह सकें।

5. यदि मनुष्य अपने आप को वैसा बनाए जैसा कि वह दूसरों को उपदेश देता है, तब इस प्रकार संयत मनुष्य दूसरों को भी संयत रख सकता है। अपने–आप को संयत रख पाना कठिन है।

6. वास्तव में मनुष्य स्वयं ही अपना संरक्षक है, दूसरा कौन संरक्षक हो सकता है ? अपने आपको सुरक्षित रखकर, मनुष्य ऐसा संरक्षक पाता है जिसका मिल पाना कठिन है।

7. मनुष्य स्वयं अपने बुरे कर्म का फल भोगता है। स्वयं ही वह परिशुद्ध होता है। शुद्धि और अशुद्धि दोनों व्यक्तिगत हैं, कोई किसी दूसरे को परिशुद्ध नहीं कर सकता।

7. प्रज्ञा, न्याय और अच्छी संगति

1. **प्रज्ञावान बनो, न्यायशील रहो और अच्छी संगति रखो।**
2. **यही बौद्ध जीवन–मार्ग है।**
3. जिस प्रकार एक ठोस पर्वत वायु के झोंके से नहीं हिल पाता, उसी प्रकार बुद्धिमान निंदा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते।
4. धम्म सुनने के पश्चात बुद्धिमान जन एक गहरी, धीर और शांत झील की तरह स्वच्छ हो जाते हैं।
5. जिसमें सत्य है, शील है, करुणा है, संयम है, संतुलन है, जो बुरे कर्म से दूर है, बुद्धिमान है, वही वास्तविक बड़ा (Elder) है।
6. बहुत बोलने से ही कोई मनुष्य 'विद्वान' नहीं होता। जो क्षमाशील होता है, जो घृणा और भय से मुक्त होता है, वही 'विद्वान' कहा जाता है।
7. वृद्धावस्था तक शील–पालन सुखकर है, दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित श्रद्धा सुखकर है, प्रज्ञा का लाभ सुखकर है तथा बुरे कर्मों का न करना सुखकर है।
8. इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह प्रज्ञावान, बुद्धिमान, विज्ञ, सहनशील, धम्मधर तथा श्रेष्ठ मनुष्य का ऐसे ही अनुसरण करे, जैसे चंद्रमा नक्षत्र–पथ का करता है।

8. विचारशीलता और बुद्धिमता

1. **प्रत्येक कार्य करते समय जागरूक रहो, प्रत्येक काम में सोच–विचार से काम लो, हर विषय में उत्सुक और उत्साही रहो।**
2. **यही बौद्ध जीवन–मार्ग है।**
3. मनुष्य को चाहिए कि वह अपने चित्त की रक्षा करे, चित्त में पैदा होने वाले विचारों को समझ पाना कठिन है, वह चंचल है, यह जहां चाहे झट से चला जाता है। ठीक प्रकार सुरक्षित चित्त सुख लाता है।
4. जो इस दूर–गामी चित्त को संयत रखेंगे, वे मार (कामराग) के बंधन से मुक्त होंगे।
5. **यदि मनुष्य का चित्त अस्थिर है, यदि वह धम्म का जानकार नहीं है, यदि उसका चित्त शांत नहीं है, तो उसकी प्रज्ञा कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं होगी।**

9. सतर्कता, उत्सुकता और साहस

1. जागरूक रहकर बुद्धिमान मनुष्य अविद्या को हटाकर प्रज्ञा रूपी प्रासाद पर चढ़कर शोक–ग्रस्त मानव–जाति को ऐसे देखता है जैसे कोई पर्वत–शिखर से बुद्धिमान मनुष्य नीचे घाटी में मूर्खों को देखता है।
2. अप्रमाद निब्बान पद है, प्रमाद मृत्यु के समान है। जो अप्रमादी हैं, वे नहीं मरते हैं और प्रमादी तो मरे समान ही होते हैं।
3. **अपने (जीवन के) उद्देश्य को, दूसरे के बड़े अर्थ के लिए भी न छोड़ो। जब एक बार अपना उद्देश्य स्पष्ट हो जाए तो उसे दृढ़तापूर्वक पकड़कर आगे बढ़ो।**
4. प्रमाद एक कलंक है, सतत प्रमाद एक काला धब्बा है। निरंतर प्रयास और प्रज्ञा की सहायता से प्रमाद रूपी विषैले तीर को निकाल बाहर करो।
5. यदि कोई अप्रमाद–युक्त मनुष्य जागरूक रहता है, यदि वह विस्मरणशील नहीं है, यदि उसकी चर्या शुद्ध है, यदि वह विवेक से काम लेता है, यदि वह संयत है तथा उसका आचरण धम्मानुसार है, तो उसका यश बढ़ता है।

10. दुख और सुख, दान तथा करुणा

1. **गरीबी से दुख पैदा होता है।**
2. लेकिन गरीबी के दूर होने से सुख का आना आवश्यक नहीं है।
3. **ऊंचा जीवन–स्तर नहीं, बल्कि ऊंचे आचरण सुख प्रदान करते हैं।**
4. यही बौद्ध जीवन–मार्ग है।
5. भूख सबसे बड़ा रोग है।
6. आरोग्य सबसे बड़ा लाभ है, संतोष सबसे बड़ा धन है, विश्वास सबसे बड़ा बंधु है और निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।
7. तृष्णा से पीड़ितों के बीच तृष्णारहित होकर हम सुखपूर्वक जीवन गुजारें।
8. धम्म का दान सब दानों से बढ़कर है। धम्म का माधुर्य सब माधुर्यों से बढ़कर है। धम्म का आनंद सब आनंदों से बढ़कर है।
9. किसी से कठोर वचन मत बोलो। ऐसा बोलने पर दूसरे भी वैसा ही उत्तर देंगे। क्रोध–युक्त वाणी दुखद है। दूसरों पर प्रहार करने पर तुम पर भी प्रहार होगा।

10. स्वतंत्रता, विनम्रता, कुशल चित्त और निःस्वार्थपरता का संसार के लिए वैसा ही महत्त्व है, जैसे रथ के लिए उसके पहिये की धुरी का।

11. यही बौद्ध जीवन–मार्ग है।

11. ढोंग

1. किसी को झूठ नहीं बोलना चाहिए। दूसरे को झूठ बोलने की प्रेरणा नहीं देनी चाहिए, और दूसरे के झूठ बोलने का समर्थन नहीं करना चाहिए। सभी प्रकार के मिथ्याभाषण से अपने को दूर रखना चाहिए।

2. **जैसा तथागत बोलते हैं वैसा ही आचरण करते हैं, क्योंकि वह जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही बोलते हैं। अर्थात वे यथाभाषी तथाकारी और यथाकारी तथाभाषी होते हैं। इसीलिए वह सम्यकसम्बुद्ध कहलाते हैं।**

12. सम्यक मार्ग का अनुसरण

1. सम्यक मार्ग को चुनो। उस पथ से विचलित न होओ।

2. सम्यक मार्ग थोड़े से ही लोगों को सुखी बनाने के लिए नहीं है, बल्कि सभी को सुखी बनाने के लिए है।

3. यह आदि में कल्याणकारी होना चाहिए, मध्य में कल्याणकारी होना चाहिए और अंत में कल्याणकारी होना चाहिए।

4. **सम्यक मार्ग पर चलने का अर्थ है बौद्ध जीवन–मार्ग पर चलना।**

5. वाणी के क्रोध के प्रति सावधान रहो। अपनी जिह्वा पर संयम रखो। मन के बुरे कर्मों को त्यागो, मन से अच्छे कर्म करो।

13. धम्म को मिथ्या धर्म में नहीं मिलाओ

1. जो झूठ को सच और सच को झूठ समझने की गलती करते हैं–ऐसे मिथ्या–दृष्टि वाले लोग कभी सत्य को प्राप्त नहीं करते।

2. जागरूक बनो! प्रमादी मत बनो! सम्यक मार्ग पर चलो! जो सम्यक मार्ग पर चलता है, वह इस संसार में सुखपूर्वक रहता है।

अध्याय–14

तथागत की धम्म देसनाएं

1. अच्छे कर्म करने की आवश्यकता

1. एक अवसर पर बुद्ध ने भिक्खुओं को इस प्रकार संबोधित किया–

2. "भिक्खुओं! अच्छे कर्म करने से मत डरो। यह 'अच्छे कर्म' ही 'सुख' का दूसरा नाम है जिसकी हम इच्छा करते हैं, जो प्रिय है, जो आनंददायी है। भिक्खुओं! मैं स्वयं साक्षी हूं कि मैंने स्वयं चिरकाल तक अच्छे कर्मों से इच्छित, रुचिकर, प्रिय तथा आनंददायी फल का उपभोग किया है।

3. "मैं प्रायः अपने आप से पूछता हूं कि यह किस अच्छे कर्म का फल है, **यह किस** अच्छे **कर्म का परिणाम है कि मैं इस समय इतना प्रसन्न और सुखी हूं ?"**

4. "जो उत्तर मुझे मिलता है वह यह है कि यह तीन अच्छे कर्मों का फल है। **यह दान, शील तथा स्वयं के संयम जैसे तीन** अच्छे **कर्मों का ही फल है।"**

5. **"वह मंगल, आनंदमय, सुखभरा, धन्य और अच्छा दिन होता है, मंगल समय होता है, जब दान के योग्य भिक्खु को दान दिया जाता है, जब मंगल कर्म, मंगल वचन तथा मंगल विचारों, मंगल आकांक्षाओं के परिणामस्वरूप ऐसे अभ्यास करने वालों को मंगल फल की प्राप्ति होती है।"**

2. सद्धम्म पर चलने के लिए किसी साथी की प्रतीक्षा आवश्यक नहीं

1. **यदि तुम्हें कोई श्रेष्ठ, दृढ़, बुद्धिमान साथी मिल जाए, तो अपनी सभी चिंताओं को छोड़कर उसके साथ प्रसन्नतापूर्वक विचरण करो।**

2. यदि तुम्हें कोई श्रेष्ठ, दृढ़, बुद्धिमान साथी नहीं मिले, तो जिस प्रकार शत्रु द्वारा पीछा किए जाने पर राजा सीमा को छोड़कर चला जाता है उसी प्रकार तुम भी जंगल में अकेले विचरण कर रहे हाथी की तरह एकांत में चले जाओ।

3. एकांत का जीवन उत्तम है। मूर्खों का साथ अच्छा नहीं हो सकता। अकेले रहो, कोई बुरा–कर्म मत करो। अल्प आवश्यकताओं के साथ अकेले रहो जिस प्रकार जंगल में बलशाली हाथी अकेला विचरण करता है।

4. सभी बुरे विचारों का त्याग करो।

3. निर्वाण क्या है ?

1. सारिपुत्त ने भिक्खुओं को उत्तर देते हुए कहा, "भिक्खुओं! तुम जानते हो कि लोभ बुरा धम्म है, द्वेष बुरा धम्म है।
2. "इस लोभ और द्वेष के त्याग हेतु एक मध्यम मार्ग है, जो हमें आंख देने वाला है, ज्ञान देने वाला है, शांति, प्रज्ञा, बोधि तथा निर्वाण की ओर ले जाने वाला है।
3. **"यह मध्यम मार्ग क्या है ? यह और कुछ नहीं केवल आष्टांगिक मार्ग है, जैसे सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम (सम्यक प्रयास), सम्यक स्मृति तथा सम्यक समाधि। भिक्खुओं! यही मध्यम मार्ग है।**
4. "हां भिक्खुओं! क्रोध बुरा धम्म है, द्वेष बुरा धम्म है, ईर्ष्या और कंजूसी बुरा धम्म हैं; मिथ्याचार, छल–कपट और अहंकार बुरा धम्म हैं, ढोंग और प्रमादपन बुरा धम्म हैं।
5. "प्रमाद और आडंबर के त्याग के लिए मध्यम मार्ग है, जो आंख देने वाला है, ज्ञान देने वाला है तथा शांति, प्रज्ञा और बोधि की ओर ले जाने वाला है।"
6. "श्रेष्ठ आष्टांगिक मार्ग का ही दूसरा नाम निर्वाण है।"
7. इस प्रकार महाथेर सारिपुत्त ने कहा तो सभी भिक्खुओं ने आनंदित होकर उनका अनुमोदन किया।

4. निर्वाण का मूल

1. एक बार राध थेर तथागत के पास आए। आकर तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए राध थेर ने तथागत से निवेदन किया, "तथागत! कृपा करके बताएं कि निर्वाण किस लिए है।"
2. बुद्ध ने उत्तर दिया, "निर्वाण का अर्थ है राग–द्वेष से मुक्त हो जाना।"
3. "लेकिन तथागत! निर्वाण का उद्देश्य क्या है ?"
4. "राध! **श्रेष्ठ जीवन जीना ही निर्वाण है। निर्वाण ही लक्ष्य है। निर्वाण प्राप्ति ही उद्देश्य है।"**

5. 'ईश्वर' से प्रार्थनाएं और याचनाएं करना बेकार

1. एक बार बुद्ध ने वासेट्ठ से बातचीत करते हुए कहा–
2. "यदि यह अचिरवती नदी ऊपर तक लबालब भरी हो और एक मनुष्य जिसे नदी के दूसरे तट पर काम हो, वह आए और इसे पार करना चाहे।
3. "और किनारे पर खड़ा होकर वह दूसरे किनारे का आह्वान करे, 'हे उधर के किनारे! इस ओर आओ! हे उधर के किनारे! इधर आओ।'
4. "हे वासेट्ठ! तुम क्या समझते हो कि मनुष्य के प्रार्थना करने से और आह्वान करने से, आशा करने से, स्तुति करने से क्या वह दूसरा किनारा उधर से इधर चला आएगा ?
5. वासेट्ठ! वास्तव में ऐसी प्रार्थना, ऐसा आह्वान, ऐसी आशा और ऐसी स्तुति करने के कारण ऐसा हो ही नहीं सकता"।

6. कोई भी भोजन खाने का निर्मलता से कोई संबंध नहीं

1. "एक व्यक्ति बुद्ध के पास आया और उसने प्रश्न किया कि मनुष्य के चरित्र पर भोजन का कोई प्रभाव पड़ता है या नहीं।
2. व्यक्ति बोला, "जौ, गिरि, दाल, कंद–मूल, कोपल जैसा भोजन यदि ठीक से खाया जाए, तो यह सुखी जीवन में सहायक होता है। मुर्दा मांस का खाना बुरा है।"
3. बुद्ध ने उत्तर दिया, "यद्यपि तुम कहते है कि तुम मुर्दा मांस को नहीं छूते तो भी तुम चिड़ियों के मांस से बना हुआ अपनी रुचि का पकवान खाते हो। मैं तुमसे पूछता हूं कि मुर्दा मांस से तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?"
4. "किसी प्राणी की हत्या करना, किसी का अंग–भंग करना, मारना–पीटना, बांधना, चोरी करना, झूठ बोलना, ठगी, छल–कपट, व्यभिचार ये सब मांस नहीं हैं, तो भी ये मुर्दा मांस के भोजन जैसे ही हैं।
5. "काम–भोगों के पीछे पड़े रहना, पेटूपन, अपवित्र जीवन, वैर–विरोध–वे सब मांस नहीं हैं, तो भी ये मुर्दा मांस के बराबर ही हैं।
6. "चुगली, निर्दयता, विश्वासघात, अत्यधिक अभिमान तथा घटिया कंजूसपन–ये सब मांस नहीं हैं, तो भी ये मुर्दा मांस के बराबर हैं।
7. "क्रोध, अहंकार, विद्रोह, चालाकी, ईर्ष्या, डींग हांकना, अहंकार, कुसंगति, ये सब मांस नहीं हैं, तो भी ये मुर्दा मांस के बराबर हैं।

8. "हीन जीवन, झूठी निंदा, छल–कपट, धोखा–धड़ी, चालबाज की युक्ति, बदनामी–ये सब मांस नहीं हैं, तो भी ये मुर्दा मांस के बराबर हैं।

9. "भावावेष में हत्या तथा चोरी करना–ये अपराध सर्वनाश से भरे हैं–ये मांस नहीं हैं, तो भी ये मुर्दा मांस के बराबर हैं।

10. "न ही मांस और मछली आहार के त्याग से, न ही नग्न रहने से, न ही चोटी रखने से, न ही मुंडे रहने से, न ही (मृग) छाल पहनने से, न ही अग्नि पूजा से, न ही भविष्य के सुख के लिए तपस्या करने से, न ही धोने से, न ही यज्ञ–हवन से और न ही धार्मिक अनुष्ठान से वह व्यक्ति स्वच्छ हो सकता है, जिसमें विचिकित्सा (संदेह) है।

11. "अपनी इंद्रियों को संयत रखो, अपने ऊपर काबू रखो, सत्य का पालन करो और दयावान रहो। जो शांत पुरुष सब बंधनों को तोड़ देता है और सब बुराइयों को समाप्त कर लेता है, वह सब कुछ देख–सुनकर भी निष्कलंक (अनासक्त) रहता है।

7. <u>राजकुमारों की कृपा पर निर्भर मत रहो</u>

1. "भिक्खुओं! यदि कोई किसी पागल कुत्ते की नाक तक कलेजी के टुकड़े को ले जाए, तो वह कुत्ता और भी अधिक पागल हो जाएगा। भिक्खुओं! राजाओं से मिलने वाले लाभ–सत्कार, अनुग्रह और चापलूसी आदि भयानक होते हैं।

2. "इसलिए भिक्खुओं! तुम्हे अभ्यास करना चाहिए कि जब हमें राजाओं से लाभ–सत्कार, कृपा और खुशामद और भेंट मिलेंगी, हम उन्हें अस्वीकार करेंगे और जब वह सिर पर आ ही पड़े तो वे हमें जकड़ नहीं पाएंगी, हमारे हृदय में उनका कोई स्थान नहीं होगा और वे हमें राजकुमारों का गुलाम नहीं बना सकेंगीं।"

8. <u>राजनीतिक और सैनिक शक्ति सामाजिक व्यवस्था पर ही निर्भर करती है</u>

1. एक समय बुद्ध राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर विहर रहे थे।

2. उस समय आनंद महाथेर तथागत के पीछे खड़े थे। तथागत ने आनंद को संबोधित किया, "आनंद! क्या तुमने सुना है कि वज्जीगण प्रायः अपनी सार्वजनिक बैठकें करते रहते हैं ?"

3. आनंद महाथेर ने उत्तर दिया, "हां तथागत! मैंने ऐसा सुना है।"

4. तथागत ने आगे कहा, "आनंद! जब तक वज्जीगण अपनी सार्वजनिक बैठकें करते रहेंगे, तब तक उनका पतन नहीं होगा बल्कि समृद्धि ही होगी।

5. "आनंद! जब तक वज्जीगण मिल–जुलकर व्यापक स्तर और समय पर सार्वजनिक बैठकें करते रहेंगे तब तक उनका पतन नहीं होगा, बल्कि समृद्धि ही होगी।

6. "जब तक वे अपने ज्येष्ठ वज्जिओं का आदर–सत्कार करते रहेंगे, उनकी आवश्यकताएं पूरी करते रहेंगे और उनकी बातों को महत्त्व देना अपना कर्तव्य समझते रहेंगे।

7. "जब तक वे अपने वज्जीगण की किसी वज्जी लड़की या स्त्री को बलपूर्वक या अपहरण करके अपने पास नहीं रोकेंगे।

8. संक्षेप में बुद्ध ने कहा कि जब तक वज्जीगण प्रजातंत्र में विश्वास करते हैं और प्रजातंत्रात्मक ढंग से कार्य करते हैं तब तक उनके गणराज्य को कोई खतरा नहीं।

अध्याय–15

संघ

1. संघ और उसका संगठन

1. बुद्ध के श्रावक दो भागों में विभक्त थे, एक तो भिक्खु और दूसरे गृहस्थ श्रावक जो उपासक कहलाते थे।
2. भिक्खु एक 'संघ में संगठित थे, किंतु वे गृहस्थ नहीं थे।
3. **इतिहास में पहली बार तथागत ने अपने भिक्खुओं का एक संघ 'भिक्खु संघ' बनाया, उनके लिए अनुशासन के नियम बनाए और आदर्श भी निश्चित किए, जिनका उन्हें पालन करना और लक्ष्य प्राप्त करना होता था।**

2. संघ में प्रवेश

1. संघ का प्रवेशद्वार सभी के लिए खुला था।
2. जाति–पांति का कोई बंधन नहीं था।
3. लिंग का कोई भेद नहीं था।
4. हैसियत जैसी कोई बाधा नहीं थी।
5. जातिवाद के लिए संघ में कोई स्थान नहीं था।
6. सामाजिक हैसियत का संघ में कोई स्थान नहीं था।
7. संघ में सभी एक–समान थे।
8. संघ में सदस्य का दर्जा जन्म से नहीं, बल्कि गुणों से निश्चित होता था।
9. **जैसा तथागत ने कहा था, संघ एक समुद्र के समान है और भिक्खु उन नदियों के समान हैं जो समुद्र में विलीन हो जाती हैं।**
10. **नदी का अपना अलग नाम होता है और अपना अलग अस्तित्व होता है।लेकिन जैसे ही नदी समुद्र में प्रवेश करती है, उसका न ही कोई पृथक नाम रह जाता है और न ही पृथक अस्तित्व।**
11. उसके साथ मिलकर वह एक हो जाती है।
12. संघ के सम्बंध में भी यही बात है। **जब एक 'भिक्खु' संघ में प्रवेश करता है, तो वह समुद्र के जल की तरह अन्य सब के साथ मिलकर एक हो जाता है।**

13. **तथागत ने कहा, उसकी कोई पृथक जाति नहीं रही। उसकी कोई पृथक हैसियत नहीं रही।**

14. 'संघ' के अंदर यदि कोई वर्गीकरण था तो पुरुष–स्त्री की दृष्टि से था। भिक्खु संघ का संगठन पृथक था और भिक्खुनी संघ का संगठन पृथक।

15. संघ में प्रवेश पाने वाले दो वर्गों में विभाजित थे–श्रामणेर तथा भिक्खु।

16. बीस वर्ष से कम आयु वाला कोई भी व्यक्ति श्रामणेर बन सकता था।

17. **त्रिशरण तथा दस शीलों को ग्रहण करने से कोई भी बालक श्रामणेर बन सकता है।**

18. "मैं बुद्ध की शरण ग्रहण करती हूं/करता हूं, मैं धम्म की शरण ग्रहण करती हूं/करता हूं तथा मैं संघ की शरण ग्रहण करती हूं/करता हूं"–ये तीन शरण हैं।

19. "मैं प्राणी–हिंसा से विरत रहूंगी/रहूंगा; मैं चोरी नहीं करूंगी/करूंगा, मैं काम भोग संबंधी मिथ्याचरण से विरत रहूंगी/रहूंगा, मैं झूठ नहीं बोलूंगी/बोलूंगा तथा मैं नशीले पेय–पदार्थों से विरत रहूंगी/रहूंगा।"

20. "मैं विकाल–भोजन से विरत रहूंगी/रहूंगा, मैं नाच–गाना–बजाना, गंदी और अश्लील बातों आदि से विरत रहूंगी/रहूंगा, मैं अपने आप को सजाने तथा अलंकृत करने से विरत रहूंगी/रहूंगा, मैं ऊंची शैय्या अर्थात ऐशो–आराम से विरत रहूंगी/रहूंगा तथा मैं सोने–चांदी को ग्रहण करने से विरत रहूंगी/रहूंगा।"

21. एक श्रामणेर जब चाहे 'संघ' छोड़कर गृहस्थ बन सकता है। एक श्रामणेर एक भिक्खु से जुड़ा रहता है और उसका अधिकांश समय उसी की सेवा में व्यतीत होता है। एक प्रकार से उसने अभी प्रव्रज्या नहीं ली होती है।

22. दो अवस्थाओं में से गुजरने पर मनुष्य 'भिक्खु' पद तक पहुंचता है। पहली अवस्था 'प्रव्रज्या' कहलाती है और दूसरी अवस्था 'उपसंपदा'। 'उपसंपन्न' होने पर ही कोई व्यक्ति भिक्खु बनता है।

23. जो प्रार्थी 'भिक्खु' बनने के उद्देश्य से 'प्रवज्या' ग्रहण करना चाहता है, उसे एक भिक्खु की आवश्यकता होती है, जिसे उपाध्याय की भूमिका निभाने का अधिकार होता है। कम से कम दस वर्ष तक जो भिक्खु रहा हो, वही 'उपाध्याय' हो सकता है।

24. इस प्रकार का प्रार्थी, जो उपाध्याय द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो, 'श्रामणेर' कहलाता है और उसे उपाध्याय की सेवा करते हुए, उसी के 'संरक्षण' में रहना पड़ता है।

25. 'शिक्षण' काल समाप्त होने पर उसका उपाध्याय ही अपने 'श्रामणेर' का नाम 'संघ' के सामने प्रस्तावित करता है। 'संघ' की विशेष बैठक किसी को उपसंपन्न करने के लिए ही बुलाई जाती है। 'उपसंपदा' के लिए 'उपसंपदार्थी' को स्वयं 'संघ' से प्रार्थना करनी पड़ती है।

26. 'संघ' पहले इस विषय में अपना संतोष कर लेता है कि प्रार्थी योग्य और सही व्यक्ति है और 'भिक्खु' बनने का अधिकारी है। इसके लिए कुछ निश्चित प्रश्न हैं, जिनका प्रार्थी को उत्तर देना पड़ता है।

27. 'संघ' द्वारा अनुमति देने पर ही उसे 'उपसंपदा' मिलती है और वह 'भिक्खु' बन जाता है।

28. भिक्खुनी–संघ में प्रवेश पाने के नियम भी बहुत कुछ वैसे ही हैं जैसे भिक्खुसंघ में प्रवेश पाने के नियम।

3. भिक्खु और उसका व्रत

1. एक उपासक अथवा एक श्रामणेर भी 'शील' ग्रहण करता है। उसे उनका पालन करना होता है।

2. एक भिक्खु तो उन 'शीलों' को ग्रहण करने के साथ–साथ उन्हें कभी न तोड़ने का 'व्रत' भी ग्रहण करता है। यदि वह उन 'व्रतों' को भंग करता है तो वह दंड का भागी होता है।

3. एक भिक्खु नियमों द्वारा प्रदत्त अनुमति के अतिरिक्त किसी भी अन्य वस्तु को न ग्रहण करने का व्रत लेता है।

4. व्रतों के भंग होने से भिक्खु 'पाराजिका' का अपराधी बन जाता है। 'पाराजिका' का दोषी पाए जाने पर दंड के परिणामस्वरूप उसे संघ से निकाल दिया जाता है।

4. भिक्खु कैसा हो ? बुद्ध की अवधारणा

1. बुद्ध ने स्वयं ही भिक्खुओं को बताया है कि वे उनसे भिक्खु के रूप में क्या अपेक्षा करते हैं। उन्होंने जो कहा वह इस प्रकार है–

2. "जो स्वयं को पाप से मुक्त किए बिना काषाय वस्त्र पहनने का इच्छुक है,

जो संयम और सत्य की उपेक्षा करता है, वह काषाय वस्त्र के योग्य नहीं है।"

3. "किंतु जिसने स्वयं को पाप से परिशुद्ध कर लिया है, कुशल धम्मों का संचय कर लिया है, जो संयम और सत्य से युक्त है, वही काषाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी है।"

4. "एक मनुष्य केवल इसलिए 'भिक्खु' नहीं कहला सकता क्योंकि वह दूसरों से 'भिक्खा' मांग कर खाता है। जो 'धम्म' को पूर्ण रूप से ग्रहण करता है, वही भिक्खु है, वह नहीं जो केवल भिक्खा मांगता है।"

5. "जो बुराइयों से परे है, जो निर्मल है, जो सावधानीपूर्वक संसार में विचरता है, वही यथार्थ में 'भिक्खु' कहलाता है।"

6. "न केवल अनुशासन एवं व्रत (प्रतिज्ञा) से, न अधिक अध्ययन से, न ही समाधि से, न अकेले सोने से विमुक्ति को प्राप्त किया जा सकता है। इसे सांसारिक सुखों में लिप्त व्यक्ति नहीं जान सकता। हे भिक्खु! जिसने तृष्णा का विनाश कर डाला है, वही इसे प्राप्त कर सकता है।"

7. **"जो भिक्खु वाणी को संयत रखता है, जो बुद्धिमानीपूर्वक और शांतिपूर्वक बोलता है, जो 'धम्म' के अर्थ को समझता है, उसकी वाणी 'मधुर' होती है।"**

8. **"जो भिक्खु करुणापूर्वक व्यवहार करता है, जो बुद्ध के शासन में प्रसन्न है, वह निर्वाण को प्राप्त करेगा–यह ऐसा सुख है जो स्वाभाविक प्रवृत्ति के त्याग से प्राप्त होता है।"**

9. "और एक बुद्धिमान भिक्खु के लिए यही श्रेष्ठ शुभारंभ है– इंद्रिय–संयम, संतोष, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन, वह श्रेष्ठ निर्मल जीवन वाले अप्रमादी मित्रों की संगति करता है।

10. "हे भिक्खु! अपने को स्वयं जाग्रत कर, अपनी परीक्षा स्वयं कर। इस प्रकार स्वयं सुरक्षित रहकर और ध्यानी होकर तू सुखपूर्वक रह सकेगा।"

11. "क्योंकि तू अपना स्वामी आप ही है, तू स्वयं अपनी शरण है, इसलिए अपने आप को उसी तरह काबू में रख जिस प्रकार व्यापारी अच्छे घोड़े को काबू में रखता है।"

5. भिक्खु तथा ब्राह्मण

1. क्या भिक्खु और ब्राह्मण एक समान हैं ? इस प्रश्न का उत्तर भी नकारात्मक ही है।
2. इस विषय की चर्चा किसी भी एक जगह पर इकट्ठी नहीं मिलेगी। यह उपदेशों में यहां–वहां बिखरी पड़ी है। लेकिन प्रसंग के पृथक्करण को आसानी से सारांश में एक जगह एकत्र किया जा सकता है।
3. एक ब्राह्मण 'पुरोहित' होता है। उसका मुख्य कार्य होता है जन्म, विवाह, मरणादि के अवसर पर 'संस्कार' कराना।
4. ये 'संस्कार' आवश्यक हो जाते हैं क्योंकि मूलतः पाप को धोने के सिद्धांत के कारण संस्कार करवाना होता है और इसलिए भी क्योंकि 'आत्मा' तथा 'परमात्मा' में विश्वास किया जाता है।
5. इन सब 'संस्कारों' के करने–कराने के लिए एक 'पुरोहित' का होना आवश्यक है। एक **भिक्खु** न तो किसी 'मूल पाप' में विश्वास करता है और न 'आत्मा' या 'परमात्मा' में। **इसलिए उसे कोई संस्कार नहीं करने होते हैं।** अतः एक भिक्खु तो 'पुरोहित' नहीं ही होता।
6. ब्राह्मण जन्म से ब्राह्मण होता है। भिक्खु बनाना पड़ता है।
7. ब्राह्मण की 'जाति' होती है। भिक्खु की कोई 'जाति' नहीं होती।
8. एक बार कोई 'ब्राह्मण' के घर पैदा हो गया, तो वह जन्म भर 'ब्राह्मण' ही रहेगा। कोई 'पाप' या कोई 'अपराध' एक 'ब्राह्मण' को 'अब्राह्मण' नहीं बना सकता।
9. लेकिन एक बार 'भिक्खु' बन जाने पर यह आवश्यक नहीं होता कि वह जन्म भर 'भिक्खु' ही बना रहे। एक 'भिक्खु' बनाया जाता है। अतः यदि वह अपने आचरण द्वारा अपने को भिक्खु रहने के अयोग्य बना ले तो उसे भिक्खु के पद से हटाया भी जा सकता है।
10. 'ब्राह्मण' बनने के लिए किसी भी प्रकार का मानसिक या नैतिक शिक्षण अनिवार्य नहीं है। ब्राह्मण से बस यही अपेक्षा की जाती है कि उसे अपनी धार्मिक कथाओं का ज्ञान हो।
11. भिक्खु का मामला इसके सर्वथा प्रतिकूल है। मानसिक तथा नैतिक शिक्षण उसका जीवन–रक्त है।

12. एक ब्राह्मण अपने लिए असीमित संपत्ति रखने के लिए स्वतंत्र है। दूसरी ओर एक भिक्खु ऐसा कदाचित नहीं कर सकता।

13. यह कोई मामूली सा अंतर नहीं है। मनुष्य की मानसिक और नैतिक स्वतंत्रता पर विचार और कार्य के क्षेत्र में भी, संपत्ति कड़े प्रतिबंध का काम करती है। यह (संपत्ति) इन दोनों के बीच विवाद उत्पन्न करती है। **इसीलिए ब्राह्मण हमेशा परिवर्तन का विरोधी रहा है, क्योंकि उसके लिए परिवर्तन का अर्थ है अधिकार की हानि और धन की हानि।**

14. संपत्ति–विहीन भिक्खु मानसिक और नैतिक रूप में स्वतंत्र होता है। जहां तक उसका सम्बंध है, उसका कोई निजी स्वार्थ नहीं होता, जो उसकी ईमानदारी और सच्चाई में बाधक बन सके।

15. कहने को तो ब्राह्मण होते हैं लेकिन प्रत्येक ब्राह्मण अपने में एक अलग व्यक्ति होता है। कोई ऐसा धार्मिक संगठन नहीं, वह जिसके अधीन हो। एक ब्राह्मण स्वयं में ही कानून होता है। हां, ब्राह्मण आपसी स्वार्थों के कारण अवश्य जुड़े होते हैं, जो मौलिक होते हैं।

16. दूसरी ओर एक भिक्खु हमेशा संघ का सदस्य होता है। यह कल्पना से परे की बात है कि कोई भिक्खु तो हो किंतु वह संघ का सदस्य न हो। भिक्खु अपने आप में कानून नहीं होता। वह 'संघ' के अधीन होता है। 'संघ' एक आध्यात्मिक संगठन है।

6. भिक्खु और उपासक

1. सद्धम्म में भिक्खु के 'धम्म' और उपासक के 'धम्म' में स्पष्ट रूप से अंतर है।

2. भिक्खु को पत्नी–विहीन रहना ही होगा, उपासक को नहीं। उपासक तो विवाह कर सकता है।

3. **भिक्खु का कोई घर नहीं हो सकता। भिक्खु का कोई परिवार नहीं हो सकता।** उपासक के लिए यह सब कुछ आवश्यक नहीं है। उपासक का घर हो सकता है, उपासक का परिवार हो सकता है।

4. **भिक्खु की कोई संपत्ति नहीं होती।** लेकिन गृहस्थ संपत्ति रख सकता है।

5. यूं तो पंचशील के नियम दोनों के लिए ही एक समान हैं। लेकिन भिक्खु के लिए वे व्रत (संकल्प) हैं। वह उन्हें तोड़ नहीं सकता, तोड़ने पर वह दंड

का भागी होगा ही। उपासक (गृहस्थ) के लिए वे अनुकरणीय शिक्षाएं हैं।

6. भिक्खु के लिए पंचशील का पालन अनिवार्य विषय है। गृहस्थ के लिए उसका पालन करना ऐच्छिक है।

7. एक प्रश्न और भी है जिसका उत्तर दिया जाना चाहिए और वह प्रश्न है—भिक्खु का जीवन—कार्य क्या है ?

8. क्या भिक्खु द्वारा स्वयं को सुसंस्कृत बनाने में ही समय लगाना चाहिए अथवा उसे लोगों की सेवा तथा उनका मार्ग—दर्शन भी करना है ?

9. उसे ये दोनों ही कार्य करने होंगे।

10. बिना स्वयं को सुसंस्कृत बनाए वह मार्गदर्शन करने के योग्य नहीं हो सकता। इसलिए उसे अपने में एक संपूर्ण, सर्वश्रेष्ठ, सदाचारी और ज्ञान—संपन्न व्यक्ति होना चाहिए। इसके लिए उसे व्यक्तिगत साधना (सुसंस्कृत होने की) का अभ्यास करना चाहिए।

11. एक भिक्खु गृहत्याग करता है, किंतु वह संसार का त्याग नहीं करता। वह अपने घर को इसलिए छोड़ता है ताकि उसे उन लोगों की सेवा करने की स्वतंत्रता और अवसर मिल सके जो अपने—अपने घरों में आसक्त हैं और जो दुख, चिंता और निराशा में पड़े हैं और जो अपनी सहायता स्वयं नहीं कर सकते।

12. धम्म का सार है 'करुणा', और उसकी मांग है कि प्रत्येक मनुष्य दूसरों से प्रेम करे और उनकी सेवा करे। भिक्खु भी इसका अपवाद नहीं है।

13. व्यक्तिगत साधना में चाहे भिक्खु कितना ही ऊंचा क्यों न हो, यदि वह मानवता की पीड़ा की ओर से उदासीन है, तो वह भिक्खु नहीं है। वह कुछ और तो हो सकता है; किंतु भिक्खु नहीं हो सकता।

7. धम्मदीक्षा देना भिक्खु का कर्त्तव्य

1. उन्हें धम्म—प्रचार के लिए विदा करने से पूर्व तथागत ने कहा, "भिक्खुओं! मैं सभी बंधनों से मुक्त हूं। भिक्खुओं! तुम भी सभी बंधनों से मुक्त होकर, अब बहुजनों के हित के लिए, बहुजनों के कल्याण के लिए (बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय), संसार पर अनुकंपा करने के लिए, अच्छाई के लिए, मनुष्यों के हित और कल्याण के लिए विचरण करो।"

2. "तुम में से कोई दो व्यक्ति एक दिशा में मत जाओ! भिक्खुओं, इस धम्म

की, सिद्धांत की देसना करो, जो आदि में कल्याणकारी है, जो मध्य में कल्याणकारी है और जो अंत में कल्याणकारी है। भिक्खुओं अर्थ और व्यंजन (शब्दों) से युक्त, उत्कृष्ट, पूर्णता को प्राप्त और पुनीत जीवन की परिशुद्धता को उद्घोषित करो।"

3. "इसलिए प्रत्येक देश–प्रदेश में होते हुए विचरो, जो अभी धम्म में अदीक्षित हैं, उन्हें दीक्षित करो, दुख से दग्ध इस समस्त संसार में विचरो और उनको शिक्षित करो, जो सम्यक उपदेश से अनभिज्ञ हैं।"
4. "इसलिए यात्रा करते हुए अनुकंपा से भर कर अकेले–अकेले जाओ और लोगों को (बंधन) मुक्त करो और उनको दीक्षित करो।"
5. तथागत ने उन भिक्खुओं को यह भी कहा–
6. "धम्म–दान सब दानों से बढ़कर है, धम्म का माधुर्य सब माधुर्यों से बढ़कर है, धम्म का आनंद सब आनंदों से बढ़कर है।"

8. <u>भिक्खु को धम्म प्रसार के लिए संघर्षरत रहना चाहिए</u>

1. भिक्खुओं को संबोधित करते हुए एक बार बुद्ध ने कहा–
2. "भिक्खुओं! ऐसा नहीं है कि मैं संसार से झगड़ता हूं। किंतु संसार मुझसे झगड़ता है। सत्य का उपदेशक संसार में कभी किसी से नहीं झगड़ता।"
3. "तथागत! हम अपने आपको योद्धा, योद्धा कहते हैं। तब हम किस प्रकार योद्धा हैं ?"
4. "भिक्खुओं! हम युद्ध करते हैं, इसलिए हम योद्धा कहलाते हैं।"
5. "तथागत! हम किस बात के लिए युद्ध करते हैं।"
6. "भिक्खुओं! हम श्रेष्ठ शील के लिए युद्ध करते हैं, श्रेष्ठ अप्रमाद के लिए युद्ध करते हैं, श्रेष्ठ प्रज्ञा के लिए युद्ध करते हैं, इसलिए हम योद्धा कहलाते है।"
7. **जहां शील को खतरा हो, संघर्ष से पीछे मत हटो, ऐसे में मौन मत रहो।**

अध्याय–16

गृहस्थ के जीवन–नियम

1. धनवान के लिए नियम

1. बुद्ध ने 'दरिद्रता को जीवन को ऊपर उठाने वाला साधन बताकर उसे कभी महिमा–मंडित नहीं किया।
2. **न ही उन्होंने गरीबों को यह कहा कि वे गरीबी में संतुष्ट रहें।**
3. इसके विपरीत **उन्होंने यह कहा कि धन का स्वागत है।** जिस बात पर उन्होंने जोर दिया वह यह है कि धन को अर्जित किया जाना विनय (नैतिकता) के अनुसार ही होना चाहिए।

2. गृहस्थ के लिए नियम

1. "कोई भी धर्म मनुष्य का धम्म तभी हो सकता है, जब वह उसे बुरी बातों का आचरण (दुराचरण) त्यागने की शिक्षा दे। प्राणियों की हिंसा करना, चोरी, व्यभिचार तथा झूठ बोलना–ये आचरण की चार बुराइयां हैं, जिनसे उसको दूर रहना चाहिए।"
2. "कोई भी धर्म मनुष्य का धम्म तभी हो सकता है जब वह उसे अपने धन को बरबाद करने की शिक्षा न दे। मनुष्य का धन शराब पीने की आदत से बरबाद होता है, अनुचित समय पर रात को बाजारों में घूमने से बरबाद होता हैं, मेले–तमाशे में घूमने–फिरने से बरबाद होता है, जुए में आसक्ति से बरबाद होता है, कुसंगति में पड़ जाने से बरबाद होता है और आलसी हो जाने की आदत से बरबाद होता है।"
3. "कोई भी धर्म मनुष्य का धम्म तभी हो सकता है जब वह मनुष्य को इस योग्य बनाए कि वह यह पहचान सके कि उसका सच्चा मित्र कौन है।"
4. **'जो सद्–परामर्श देता हो, उसे 'सच्चा मित्र' जानना चाहिए; क्योंकि वह तुम्हें बुराई से रोकता है; वह तुम्हें अच्छे कर्म करने के लिए प्रेरित करता है; जो बातें तुमने पहले नहीं सुनीं, ऐसी बातें वह सुनाता है; वह तुम्हें 'निर्वाण' का मार्ग दिखाता है।**
5. बुद्ध ने बताया, "किसी को छः दिशाओं की पूजा करने की शिक्षा देने के बजाय जो धम्म मानव धम्म **(बौद्व धम्म)** होता है वह ये **छः शिक्षाएं देता है।** वह अपने **(1) माता–पिता का आदर सत्कार करे, (2) अपने**

शिक्षकों का आदर करे, (3) अपनी स्त्री तथा अपने बच्चों को प्यार करे, (4) अपने मित्रों तथा साथियों से स्नेहपूर्ण व्यवहार करे, (5) अपने नौकरों और श्रमिकों की सहायता करे, (6) अपने 'भिक्खुओं' का सम्मान करे।"

3. <u>बच्चों के लिए नियम</u>

1. "एक बालक को यह कहते हुए अपने माता–पिता की सेवा करनी चाहिए–'एक समय इन्होंने मेरा पालन–पोषण किया था, अब मैं इनका पोषण करूंगा। इनके प्रति जो भी मेरा कर्तव्य है, मैं उसे अच्छी तरह निभाऊंगा। मैं अपनी वंश–परंपरा को कायम रखूंगा। मैं अपने आप को उत्तराधिकारी के योग्य बनाऊंगा, क्योंकि माता–पिता नाना प्रकार से अपनी संतान के प्रति अपना प्रेम प्रकट करते हैं, वे उसे बुराई से बचाते हैं, वे उसे सद्गुणपूर्ण काम करने के लिए प्रेरित करते हैं, वे उसे जीविका चलाने के योग्य बनाते हैं, वे उसका यथा–योग्य विवाह करते हैं और उचित समय पर वे उसको उत्तराधिकार सौंप देते है।"

अध्याय–17
उनके धम्म के आलोचक
1. <u>व्रत (Vows) ग्रहण करने की आलोचना</u>

1. पंचशील ही पर्याप्त क्यों नहीं हैं? अन्य व्रतों को भी ग्रहण करना क्यों आवश्यक समझा जाता है ? ये प्रश्न थे, जिन्हें प्रायः उठाया जाता था।
2. यदि गृहस्थ उपासक पंचशील ग्रहण करके ही इंद्रियों के भोग भोगता हुआ भी शांति, श्रेष्ठ निर्वाण को प्राप्त कर सकता है तो भिक्खु को उन शीलों तथा दूसरे व्रतों को व्रत–रूप में ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है ?
3. बुद्ध ने इन्हें 'व्रतों' का स्वरूप इसलिए दिया है, क्योंकि इनमें सद्‌गुण समाहित हैं।
4. जो जीवन व्रत–युक्त है, उसमें सदाचरण का विकसित होना निश्चित है। व्रत अपने में ही पतन के विरुद्ध एक बड़ा संरक्षण है।
5. जो लोग 'व्रत' ग्रहण करते हैं और उनका स्वेच्छा से पालन करते हैं, वे दुख से मुक्ति प्राप्त करते हैं।
6. जो 'व्रत' ग्रहण करते है, तथा उनका पालन करते हैं, वे निश्चित रूप से संरक्षित रहते हैं और आचरण तथा मन से परिशुद्ध रहते हैं।
7. मात्र शील ग्रहण करने से ऐसा नहीं होता।
8. केवल शील ग्रहण करने की स्थिति में नैतिक पतन के विरुद्ध कोई संरक्षण नहीं होता, किंतु व्रत (संकल्प) में ऐसा संरक्षण संभव है।
9. 'भिक्खु' (संकल्प साधक) का जीवन बहुत कठिन होता है, मात्र शील ग्रहण करने वाले का नहीं। **मानवता के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि समाज में कुछ भिक्खु भी रहें।** इसीलिए बुद्ध ने 'शीलों' तथा 'व्रतों' दोनों की व्यवस्था की है।

2. <u>अहिंसा के सिद्धांत की आलोचना</u>

1. ऐसे लोग भी थे, जो 'अहिंसा' के सिद्धांत पर आपत्ति करते थे। उनका कहना था कि 'अहिंसा' का अर्थ है 'अन्याय' तथा 'अत्याचार' के सामने झुक जाना।
2. बुद्ध ने 'अहिंसा' के सिद्धांत का जो उपदेश दिया, उसकी यह बिलकुल गलत व्याख्या है।

3. बुद्ध ने अनेक अवसरों पर अपनी स्थिति स्पष्ट की है, जिससे इस बारे में किसी भी प्रकार की अस्पष्टता या भ्रम न रहे।

4. ऐसा प्रथम उल्लेखनीय अवसर वह था, जब उन्होंने एक सैनिक के संघ में प्रविष्ट होने के बारे में नियम बनाया।

5. इन बातों पर अच्छी तरह विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि **बुद्ध की देशना में अहिंसा आधारभूत है; किंतु वह निरपेक्ष नहीं है।**

6. उन्होंने सिखाया कि बुराई को भलाई से जीतना चाहिए लेकिन उन्होंने यह कभी नहीं सिखाया कि बुराई द्वारा भलाई को पराजित होने देना चाहिए।

7. वह अहिंसा के समर्थक थे और उन्होंने हिंसा की निंदा की। लेकिन उन्होंने इस बात से कहीं इनकार नहीं किया कि बुराई द्वारा नष्ट की जा रही भलाई की रक्षा के लिए आखिरी हथियार के रूप में हिंसा का प्रयोग न किया जाए।

8. इस प्रकार, ऐसा नहीं है कि बुद्ध ने किसी खतरनाक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। आलोचक ही उसके महत्त्व और क्षेत्र को ठीक प्रकार समझ पाने में असफल रहे हैं।

3. शील का उपदेश देकर अंधकार (निराशा) उत्पन्न करने का आरोप

(क) दुख निराशा का कारण

1. कपिल के अनुसार दुख का मूल अर्थ है—अशांति, उत्तेजना।
2. आरंभ में इस शब्द का तात्त्विक (गूढ़) अर्थ होता था।
3. बाद में इसका अर्थ शरीर और मन का कष्ट हो गया।
4. दोनों अर्थ एक दूसरे से बहुत अलग नहीं थे। दोनों बहुत निकट थे।
5. अशांति से ही शरीर तथा मन के कष्ट उत्पन्न होते हैं।
6. शीघ्र ही इसका अर्थ सामाजिक तथा आर्थिक कारणों से होने वाला शारीरिक और मानसिक कष्ट हो गया।
7. बुद्ध ने दुख शब्द को किन अर्थों में प्रयुक्त किया है ?
8. बुद्ध का एक उपदेश है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि **तथागत इस बात को भली–भांति जानते थे कि दरिद्रता ही दुख का कारण है।**

9. अपने उस उपदेश में तथागत कहते हैं, "भिक्खुओं! सांसारिक प्राणी के लिए क्या दरिद्रता दुखद वस्तु है ?"

10. "तथागत! निष्चित रूप से।"

11. **"और जब मनुष्य गरीब होता है, उसे गरज रहती है, उसका हाथ तंग रहता है, वह कर्ज में फंस जाता है, तो क्या वह अवस्था भी दुखद है ?"**

12. "तथागत! निश्चित रूप से।"

13. "और जब वह कर्ज में डूबा होता है, वह उधार लेता है तो क्या यह भी दुखद है ?"

14. "तथागत! निश्चित रूप से।"

15. "और जब कर्जा चुकाने का समय आता है, वह कर्जा चुका नहीं पाता और लेने वाले उस पर जोर डालते हैं, तो क्या यह भी दुखद है ?"

16. "तथागत! निश्चित रूप से।"

17. "और जब जोर डालने पर भी वह नहीं दे पाता, तो वे उसे पीटते हैं, तो क्या यह भी दुखद है ?"

18. "तथागत! निश्चित रूप से।"

19. "और जब वह पीटने पर भी नहीं दे पाता, तो वे उसे बांध डालते हैं, तो क्या यह भी दुखद है ?"

20. "तथागत! निश्चित रूप से।"

21. **"इसलिए भिक्खुओं! दरिद्रता, कर्ज (उधार) लेना, जोर डाला जाना, पीटा जाना तथा बांधा जाना–ये सभी सांसारिक प्राणी के लिए कष्टप्रद हैं।**

(ख) 'अनित्यता' को निराशा का कारण बताना

1. इस 'अंधकारवृत' के आरोप का एक अन्य आधार उनका 'अनित्यता' का सिद्धांत बताया जाता है, जिसके अनुसार सभी निर्मित वस्तुएं अनित्य हैं, अस्थाई हैं।

2. इस सिद्धांत की सच्चाई पर कोई प्रश्न नहीं उठाता।

3. सभी स्वीकार करते हैं कि हर चीज अनित्य है।

4. यदि कोई सिद्धांत 'सत्य' है, तो उसे सत्य कहा ही जाना चाहिए, भले ही वह सत्य कितना ही कटु क्यों न हो।

5. लेकिन इसका निराशावादी निष्कर्ष क्यों निकाला जाए ?

6. यदि जीवन क्षणिक है, तो यह क्षणिक है; इस विषय में किसी को भी दुखी होने की जरूरत नहीं है।

7. यह तो केवल अपने–अपने दृष्टिकोण और व्याख्या पर निर्भर करता है।

8. यदि 'अनित्यता' का सिद्धांत निराशाजनक है, तो केवल इसलिए है कि 'नित्यता' को सत्य मान लिया गया। यद्यपि ऐसा मानना भ्रामक और झूठा है।

9. इसलिए बुद्ध की देशना पर अंधकार फैलाने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

(ग) क्या बौद्ध धम्म निराशावादी है ?

1. बुद्ध के धम्म पर 'निराशावादी' होने का आरोप लगाया गया है।

2. इस आरोप का कारण प्रथम आर्य सत्य है, जो बताता है कि संसार में दुख है।

3. फिर यदि बुद्ध ने केवल 'दुख' की ही बात की होती, तब तो यह आरोप लगाया भी जा सकता था।

4. लेकिन बुद्ध का दूसरा और तीसरा श्रेष्ठ सत्य इस बात पर जोर देता है कि इस दुख को दूर किया जाना चाहिए। दुख को दूर करने के कर्तव्य पर जोर देने के लिए ही तथागत ने दुख के अस्तित्व की चर्चा की।

5. **बुद्ध ने दुख को दूर करने की बात को सर्वाधिक महत्त्व दिया है।** यही कारण है कि जब कपिल ने केवल यह कहा कि दुख है, और इससे अधिक इसके बारे में कुछ नहीं कहा, तो सिद्धार्थ असंतुष्ट हो गए और उन्होंने आलार कालाम का आश्रम छोड़ दिया।

6. तब ऐसा धम्म निराशावादी धम्म कैसे कहा जा सकता है ?

7. निश्चय से जो शास्ता दुख को दूर करने के लिए इतने उत्सुक थे, उन पर निराशावादी होने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

अध्याय– 18
महापरिनिर्वाण
1. उत्तराधिकारी की नियुक्ति के लिए आग्रह

1. आनंद और श्रामणेर चुंद दोनों मिलकर तथागत के पास पहुंचे और अभिवादन कर तथागत की निगण्ठनाथ पुत्र की मृत्यु की सूचना दी और साथ ही आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि तथागत अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त कर दें।
2. चुंद की बात सुनी तो तथागत ने उत्तर दिया, ”चुंद! जरा सोचो कि लोक में एक शास्ता उत्पन्न होता है अर्हत, सम्यकसम्बुद्ध; वह सद्धम्म की स्थापना करता है, जो सुव्याख्यायित है, जो प्रभावशाली पथ–प्रदर्शक है, जो शांति प्रेरक होता है; लेकिन यदि उसके श्रावक विनय में सम्यक रूप से प्रतिष्ठित नहीं होते, न ही वे शिष्टाचार को सुरक्षित रख पाते हैं, मनुष्यों में श्रेष्ठ उनका शास्ता जब मृत्यु को प्राप्त होता है।
3. ”तो हे चुंद! ऐसे शास्ता का न रहना उसके श्रावकों के लिए भी बड़े दुख की बात होती है और धम्म के लिए भी यह बहुत बड़ा खतरा होता है।
4. ”लेकिन 'धम्म' सम्बंधी विवादों का कोई डिक्टेटर (तानाशाह) फैसला नहीं कर सकता, और एक उत्तराधिकारी भी क्या कर सकता है, यदि वह तानाशाह की भूमिका नहीं निभाता ?
5. ”धम्म सम्बंधी विवादों का निर्णय किसी तानाशाह का विषय नहीं है।
6. ”किसी भी विवाद के बारे में स्वयं संघ को ही निर्णय करना चाहिए। संघ को एकत्र होकर विवाद को निपटाना चाहिए, इस पर विचार कर किसी समझौते पर पहुंचना चाहिए और तब उसके अनुरूप समझौते द्वारा अंतिम निर्णय लेना चाहिए।
7. **”बहुमत द्वारा निर्णय लेना ही विवादों को हल करने का एक तरीका है, उत्तराधिकारी का नियुक्त किया जाना नहीं।”**

2. अंतिम वचन

1. तब बुद्ध ने आनंद से कहा–
2. ”आनंद! हो सकता है कि तुम ऐसा कहो, कि अब हमारे शास्ता नहीं रहे। अब उनका उपदेश नहीं हो पाएगा। लेकिन आनंद! तुम्हें ऐसा नहीं समझना

चाहिए। **जो कुछ मैंने धम्म, विनय और अनुशासन सिखाया है, मेरे बाद वही तुम्हारे शास्ता होंगे।**

3. "आनंद! इस समय भिक्खुसंघ में परस्पर एक–दूसरे को सम्मान संबोधन से ही पुकारने की आदत है। बड़े छोटे का कोई भेद नहीं करते। मेरे परिनिर्वाण के बाद इस आदत को त्याग दिया जाना चाहिए। बड़े भिक्खु द्वारा श्रामणेर का नाम लेकर अथवा आवुस (आयुष्मान) कहकर पुकारना चाहिए, किंतु श्रामणेर अथवा छोटे भिक्खु द्वारा बड़े भिक्खु को 'भंते' अथवा 'श्रद्धेय' कहकर पुकराना चाहिए।

4. "और आनंद! यदि संघ चाहे तो मेरे परिनिर्वाण के बाद जो छोटे–मोटे नियम हैं, उन्हें छोड़ा भी जा सकता है।

5. "आनंद! तुम छन्न को जानते हो, वह कैसा जिद्दी, दुष्ट है तथा उसमें 'विनय' को मानने की भावना ही नहीं है ?

6. "आनंद! मेरे बाद छन्न को 'कड़ा दंड' (उपेक्खा) दिया जाए।"

7. "तथागत! **'कड़ा दंड' (उपेक्खा) से अपका क्या अभिप्राय है ?"**

8. **"आनंद! छन्न चाहे कुछ भी कहे, उसे कहने दिया जाए, उसके साथ बोला न जाए, उसकी भर्त्सना न की जाए, उसे भिक्खुओं द्वारा कोई भी शिक्षा न दी जाए। उसे अकेला छोड़ दिया जाए। हो सकता है कि इस तरह वह सुधर जाए।"**

9. तब तथागत ने भिक्खुओं को संबोधित किया–

10. "हो सकता है कि किसी भिक्खु के मन में बुद्ध के विषय में, या धम्म के विषय में, या संघ के विषय में, कोई शंका हो, उलझन हो। अथवा मार्ग के ही विषय में कोई भी शंका हो, उलझन हो। यदि हो, तो भिक्खुओं! अभी समय है, पूछ लो। बाद में यह सोचकर न पछताना कि "हमारे शास्ता हमारे सम्मुख थे, तो भी हमने उनकी उपस्थिति में उनसे प्रश्न पूछने में कोई रुचि नहीं ली।"

11. ऐसा कहने पर भिक्खु चुप रहे।

12. तब दूसरी बार और तीसरी बार भी तथागत ने अपनी बात दोहराई। परन्तु भिक्खु मौन ही रहे।

13. तब तथागत ने कहा, "हो सकता है कि मेरे प्रति आदर भाव होने के कारण तुम नहीं पूछ रहे हो। भिक्खुओं! जैसे एक मित्र दूसरे मित्र से बात करता है, वैसे ही तुम मुझसे बोलो।"

14. तब भी भिक्खु चुप ही रहे।

15. तब आनंद थेर ने तथागत से कहा, "तथागत! अद्भुत है! तथागत! आश्चर्य है! मुझे इस संघ पर भरोसा है। इतने भिक्खुओं में कोई एक भी नहीं है, जिसे बुद्ध के बारे में, धम्म के बारे में शंका हो, संघ के बारे में कोई शंका हो, कोई उलझन हो अथवा मार्ग के बारे में शंका हो।"

16. "आनंद! तुम विश्वास के भरोसे बोल रहे हो। किंतु तथागत को यथार्थ के बारे में ज्ञान है, इन भिक्खुओं में से किसी एक को भी, इस बारे में कोई शंका या उलझन नहीं है। मेरे इन पांच सौ भिक्खुओं में से जो सबसे पिछड़ा हुआ है, वह भी कम से कम स्रोतापन्न अवश्य है, अर्थात स्रोत में आ पड़ा है, उसका पतन नहीं हो सकता और उसकी बोधि–प्राप्ति सुनिश्चित है।"

17. तब तथागत ने भिक्खुओं को संबोधित किया–

18. "भिक्खुओं! मैं फिर तुम्हें स्मरण करा रहा हूं। **सभी संस्कार अनित्य हैं। इसलिए अप्रमादपूर्वक अपने लक्ष्य की प्राप्ति में लगे रहो।"**

19. तथागत के ये **अंतिम शब्द** थे।

3. शोकाकुल आनंद

1. जब उनकी आयु अधिक हो गई तो देख–रेख के लिए उन्हें एक परिचारक (सेवक) की आवश्यकता पड़ी।

2. उन्होंने पहले नंद को चुना। नंद के बाद आनंद को चुना। आनंद अंतिम समय तक तथागत के परिचारक रहे।

3. आनंद केवल परिचारक ही न थे, बल्कि उनके दिन–रात के प्रियतम साथी भी थे।

4. जब बुद्ध कुसीनारा पहुंचे और दो साल–वृक्षों के मध्य विश्राम करने लगे, तो तथागत को लगा कि उनका अंत समय निकट आ रहा है, तो उन्होंने अनुभव किया कि उन्हें कम से कम आनंद को बताकर विश्वास में लेना चाहिए।

5. **इसलिए उन्होंने आनंद को बुलाया और कहा, "हे आनंद! अब रात्रि के तीसरे पहर में कुसीनारा के उपवन में इन्हीं साल वृक्षों के मध्य, तथागत का परिनिर्वाण होगा।"**

6. जैसे पहले घोषणा की गई थी, रात्रि के तीसरे पहर में ही तथागत महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गए।

7. जब तथागत का महापरिनिर्वाण हो गया, तो कुछ भिक्खु और आनंद बाहें पसार–पसार कर रोने लगे, कुछ दुखाभिभूत होकर भूमि पर इधर–उधर गिर पड़े और कहने लगे, "तथागत अत्यंत शीघ्र महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। प्रिय तथागत अत्यंत शीघ्र ही अस्तित्व से दूर हो गए। यह भुवन–प्रदीप बहुत ही शीघ्र बुझ गया।

8. **यह वैशाख–पूर्णिमा की मध्य रात्रि थी, जब तथागत महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उनका महापरिनिर्वाण ईसा पूर्व 483 (चार सौ तिरासी) में हुआ।**

4. अंतिम संस्कार

1. तब कुसीनारा के मल्लों ने आनंद थेर से पूछा, "अब तथागत के शरीर के प्रति क्या करणीय है ?"

2. आनंद थेर ने उत्तर दिया, "जैसे लोग राजाओं के राजा महाराजाओं की दाह–क्रिया करते हैं, वैसे ही तथागत की होनी चाहिए।"

3. तब कुसीनारा के मल्लों ने अपने आदमियों को आज्ञा दी, 'तथागत की अंत्येष्ठि की तैयारी करो। सुगंधियों, फूलों तथा कुसीनारा के बाजे बजाने वालों को इकट्ठा करो।"

4. तब सातवें दिन कुसीनारा के मल्लों ने सोचा : "आज हम तथागत के शरीर को ले चलें और उनकी अंत्येष्ठि की जावे।"

5. **तदनंतर मल्लों के आठ मुखियों ने सिर से स्नान किया, नए वस्त्र पहने ताकि वे तथागत की अर्थी को कंधा लगा सकें।**

6. वे तथागत के शरीर को मल्लों की श्मशान भूमि मुकुट बंधन पर ले गए, जहां नगर के पूर्व की ओर मल्लों का चैत्य था। वहां तथागत के शरीर को रखकर उसे **महाथेर महाकस्सप द्वारा अग्नि–स्पर्श करा दिया गया।**

7. कुछ समय बाद तथागत की नश्वर देह राख में परिणत हो गई।

अध्याय–19

महामानव सिद्धार्थ गौतम

1. महाकारुणिक की करुणा

1. एक बार जब तथागत सावत्थि में ठहरे हुए थे, तब कुछ भिक्खुओं ने आकर शिकायत की कि विरोधी देव–गण उन्हें लगातार परेशान कर रहे हैं, आते हैं और उन्हें हैरान–परेशान करते हैं तथा वे उनकी विपस्सना (ध्यान–साधना) में विघ्न उपस्थित करते हैं।
2. उनकी व्यथा–कथा सुनकर बुद्ध ने उन्हें निम्नलिखित उपदेश दिया–
3. "जो सद्‌गुणों में कुशल है, जो शांत स्थिति को प्राप्त करना चाहता है, उसे इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, उसे समर्थ होना चाहिए, उसे ईमानदार होना चाहिए, उसे सुवच होना चाहिए, उसे मृदुभाषी तथा विनम्र होना चाहिए।"
4. "कोई किसी दूसरे को धोखा न दे। कोई किसी से घृणा न करे, कोई किसी का बुरा न चाहे, क्रोध से अथवा द्वेषवश किसी को हानि न पहुंचाए।"
5. "जैसे मां अपनी जान को खतरे में डालकर भी अपने बच्चे की रक्षा के लिए तैयार रहती है, इसी प्रकार मनुष्य को अपने चित्त में वैसा ही भाव असीम रूप में बनाना चाहिए।"
6. "उसे समस्त लोक में अपनी असीम मैत्री का संचार करना चाहिए। ऊपर, नीचे, चारों ओर, बिना किसी बाधा के, बिना किसी शत्रुता के।"
7. "चाहे वह खड़ा हो, चलता हो, बैठा हो, लेटा हो; जब तक वह जागता रहे, उसे अपनी सतत जागरूकता बनाए रखनी चाहिए; कहा जाता है कि यही श्रेष्ठ जीवन है।"
8. "किसी मिथ्या दृष्टि में न पड़े, शीलवान हो, ज्ञानी हो, इंद्रिय–सुखों में आसक्त न हो।"
9. संक्षेप में बुद्ध ने कहा, "अपने शत्रुओं से भी मैत्री करो।"

2. पीड़ितों को सांत्वना (विशाखा को सांत्वना)

1. विशाखा एक उपासिका थी। भिक्खुओं को प्रतिदिन दान देना उसकी दैनिक चर्या थी।

2. एक दिन उसके साथ रहने वाली उसकी पोती सुदत्ता बीमार हुई और मर गई।

3. विशाखा के लिए यह शोक असह्य हो गया।

4. उसकी दाह–क्रिया के बाद वह बुद्ध के पास गई और आंखों में आंसू भरे हुए एक ओर बैठ गई।

5. तथागत ने पूछा, "विशाखा! तू किसके लिए दुखी और शोकाकुल बैठी है, और आंखों से आंसू गिरा रही है ?"

6. "विशाखा! सावत्थि में कुल कितनी लड़कियां होंगी ?"

7. "यदि वे सभी तुम्हारी पोतियां हों, तो क्या तुम उनको प्यार नहीं करोगी ?"

8. "तथागत! निश्चय ही।"

9. "और सावत्थि में प्रतिदिन कितनों की मृत्यु होती है ?"

10. "तथागत! अनेक की।"

11. "तब तो एक क्षण भी ऐसा न होगा, जब तुम्हें किसी न किसी के लिए शोक न करना पड़े ?"

12. "तथागत! सत्य है!"

13. "तब क्या तुम दिन–रात रोते हुए अपना जीवन गुजारोगी ?"

14. "तथागत! आपने ठीक–ठीक समझा दिया; मैं समझ गई।"

15. " तो फिर अब शोक मत करो।"

3. उनकी समता की भावना तथा समान व्यवहार

1. तथागत ने जितने भी नियम भिक्खु संघ के लिए बनाए, उन्हें उन्होंने स्वेच्छा से स्वीकार करते हुए अपने ऊपर भी लागू किया।

2. उन्होंने संघ के स्वीकृत प्रमुख होने के आधार पर इन नियमों से किसी प्रकार की छूट अथवा विशेष व्यवहार का दावा नहीं किया। उनके प्रति असीम प्रेम और आदर होने के कारण, भिक्खु संघ उनको स्वेच्छा से किसी भी प्रकार की सुविधा (रियायत) प्रदान करने में प्रसन्नता अनुभव करता है।

3. भिक्खु संघ के सदस्यों द्वारा दिन में केवल एक बार भोजन ग्रहण करने

के नियम को तथागत ने उसी प्रकार स्वीकार किया और उसका पालन किया, जिस प्रकार भिक्खु संघ द्वारा किया जाता था।

4. भिक्खु के पास कोई निजी संपत्ति नहीं रहनी चाहिए; इससे सम्बंधित नियम को तथागत द्वारा उसी प्रकार स्वीकार किया गया तथा उसका पालन किया गया, जिस प्रकार भिक्खु करते थे।

5. भिक्खु के पास केवल तीन चीवर ही होने चाहिए, इससे सम्बंधित नियम को तथागत द्वारा उसी प्रकार स्वीकार, उसी प्रकार पालन किया गया, जिस प्रकार भिक्खु करते थे।

6. आरंभ में भिक्खु संघ का यही नियम था कि कूड़ों के ढेर पर पड़े चीथड़ों को उठाकर भिक्खु संघ अपना चीवर बनाएं। यह नियम इसलिए बना था जिससे धनी–वर्ग के लोगों का संघ में प्रवेश रोका जा सके।

7. लेकिन एक बार जीवक ने तथागत से आग्रह किया कि वह नए कपड़े से बनाया गया चीवर स्वीकार करें। जब तथागत ने वह चीवर स्वीकार कर लिया, तो उन्होंने उसी समय पहले के नियम को ढीला कर दिया और भिक्खुओं को भी नया चीवर पहनने की सुविधा दे दी।

अध्याय—20

उपसंहार

उनके धम्म के प्रचार की प्रतिज्ञा

1. असीम प्राणी हैं;

   आओ हम प्रतिज्ञा लें कि कल्याण के पथ पर हम उनकी सहायता करेंगे।

2. हम में असंख्य कमियां हैं;

   आओ हम प्रतिज्ञा लें कि हम उन सबको दूर करेंगे।

3. अनंत सत्य हैं;

   आओ हम प्रतिज्ञा लें कि हम सभी का बोध—प्राप्त करेंगे।

4. बुद्ध के अनुपम मार्ग की कोई तुलना नहीं है,

   हम प्रतिज्ञा लें कि हम उस पर पूरी तरह चलेंगे।

भवतु सब्ब मंगलं

COMPLETE AMBEDKARISM ONLY WITH BUDDHISM

सम्पूर्ण अम्बेडकरवाद केवल बुद्ध धम्म के साथ

Social Action Groups for Ambedkarite Reforms (SAGAR)
9818063185, 9354818711, 999019782